विद्यार्थी-संस्करण

[विद्यार्थियोकी दृष्टिसे संशोधित संस्करण]

मूल लेखक—

स्वर्गीय नाट्याचार्य द्विजेन्द्रलाल राय

अनुवाद-कर्त्ता—

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

वैशाख, वि० सं० १९९२

अप्रैल, १९३५

मूल्य सवा रुपया

प्रकाशक

नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई



मुद्रक

रघुनाथ दिपाजी देसाई
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केलेवाडी गिरगाँव, बम्बई नं० ४

वक्तव्य

महाभारतकारने भीष्मका जो चरित्र अकित किया है, मनुष्यका उससे अधिक उच्च चरित्र सभव ही प्रतीत नहीं होता। महाभारतके भीष्म पूर्ण है, उच्चतम हैं कर्मयोगी हैं और किसी भी अशमे ईश्वरसे (अपनी वैयक्तिक महत्तामे) कम नहीं हैं। अगर हम कहे कि महाभारतके सबसे प्रधान नायक भीष्म हैं तो इसमे जरा भी अत्युक्ति न होगी। कर्मयोगी मनुष्यके चरित्रकी इससे बडी और पूर्ण कल्पना ससारके और किसी कविने नहीं की। भीष्मने कामदेवको परास्त किया, उन्होने विवाह नहीं किया, फिर भी वह 'पितामह' कहलाए। पिताकी इच्छा-पूर्तिके लिए उन्होने इतने बडे साम्राज्यका राजत्व छोड दिया, कानून और शासन-व्यवस्थाका सम्मान बढानेके लिए वह स्वेच्छापूर्वक हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर आसीन अपने पोतेकी सेवामे आज्ञापालक राजकर्मचारी बनकर रहे, इसपर भी वह साम्राज्यके कर्णधार थे। महाभारतकारका कहना है कि भीष्मने मृत्युपर विजय प्राप्त की थी। सचमुच उन्होने भीष्मका जैसा महान् और पूर्ण चरित्र खींचा है, उसके सामने मृत्यु जैसी महती शक्ति भी बिलकुल निर्जीव और निस्तेज हो जाती है।

हमारे देशके महाकवि द्विजेन्द्रलाल रायने महामति भीष्मके इसी देव-चरित्रको लेकर इस सुन्दर नाटककी रचना की है। हमारी दृष्टिमे यह नाटक इतना उत्तम और इतना भावोत्पादक है कि घर-घरमे इसका प्रचार होना चाहिए। उस देव-पुरुषके जीवनचरित्रका स्वाध्याय करना भी निस्सन्देह एक पुण्य-कार्य है।

महाकवि द्विजेन्द्रलालकी रचनाओकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होने मानव-हृदयके सम्पूर्ण भावो तथा विकारोका भली प्रकार चित्रण किया है, तथापि उनकी कृतियोमे कही भी अश्लीलता नही आने पाई है। विशेषकर उनका यह
४ भीष्म नाटक तो सचमुच पाठकके हृदयमे उच्च आदर्श भरनेकी क्षमता रखता

है । नथापि स्वाभाविक रूपसे इस नाटकमें भी कुछ स्थल ऐसे थे, जिनका विद्यार्थियोंके सामने न लाया जाना ही अधिक अच्छा है । इसका कारण यही है कि विद्यार्थी-दशामे किशोर बालकोका हृदय अपरिपक्व और अर्द्ध विकसित होनेके कारण मानवीय हृदयके अनेक प्रबलतम भावोसे अपरिचित होता है । ऐसे भावोंका विद्यार्थियोंके सामने आना, भारतीय दृष्टिकोणसे वाञ्छनीय नहीं है । कविवर द्विजेन्द्रलाल रायने अपने इस नाटकमे जहाँ जहाँ उन भावोका गहरा अनुशीलन किया था, वे स्थल हमने या तो निकाल दिये हैं अथवा उन्हे परिवर्तित कर दिया है। मगर कुल मिलाकर भी इस तरहका हेरफेर बहुत थोडासा ही हुआ है ।

विद्यार्थी-दशामे ब्रह्मचारी भीष्मका देवचरित्र किशोर अवस्थाके बालकोके हृदयको शुभ और उच्च भावोंसे भरनेमें सहायक होगा, इसी धारणासे हम इस नाटकका यह ' विद्यार्थी-सस्करण ' प्रकाशित कर रहे हैं । आशा है, हिन्दी-जगत इससे लाभ उठाएगा ।

—प्रकाशक



पात्र



पुरुष

शिव, श्रीकृष्ण, परशुराम

शान्तनु	... ...	हस्तिनापुरके राजा
भीष्म चित्रांगद विचित्रवीर्य	... ...	शान्तनुके पुत्र
माधव ...	... ..	शान्तनुका सखा (विदूषक)
शाल्व ...	... ...	सौभ-नरेश

महर्षि व्यास, धीवरराज, धीवरराजका मन्त्री, काशीनरेश, पाँचों पाण्डव, कौरव पक्षके लोग



स्त्री

पार्वती, गंगा

सत्यवती	...	धीवरराजकी कन्या (चित्रांगद और विचित्रवीर्यकी माता)
अंबा अंबिका अंबालिका	...	काशीनरेशकी कन्यायें
गान्धारी	..	कौरवोंकी माता
कुन्ती ...	..	पाण्डवोंकी माता
सुनन्दा	...	अंबाकी सखी



भीष्म

पहला अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—व्यासजीके आश्रमका उपवन

स्थान—कुछ दिन रहे

[व्यासदेव और भीष्म-पितामह टहल रहे हैं ।]

व्यास—धर्मका सूक्ष्म तत्त्व बहुत ही गूढ़ है । शास्त्रमे लिखा है–'धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायाम्' ।

भीष्म—उसे मै कहाँ खोजूं ?

व्यास—अपने ही हृदयमे ।

भीष्म—उसे पाऊँगा कैसे ?

व्यास—मन एकाग्र करो और कान लगाकर सुनो; तुम्हे अपने हृदय-मन्दिरमे वह सुमधुर, ढका हुआ, ध्रुव, गाढ़, गम्भीर सङ्गीत सुन पडेगा ।

भीष्म—कहाँ !—कुछ भी तो नही सुन पड़ता प्रभो !

व्यास—निश्चय सुन पडेगा । देवव्रत, मैने तुमको दिव्य ज्ञान दिया है । हॉ अबकी वार सुनो—सुनो; उस धर्म-संगीतकी मधुर झनकार हृदय-वीणाके तारोमे सुन पड़ती है । सुनते हो ?

भीष्म—हाँ सुनता हूँ, जैसे दूरपर समुद्रकी लहरोंका अस्पष्ट शब्द सुन पड़ रहा है।

व्यास—उसका मतलब समझते हो ?

भीष्म—जरा भी नहीं।

व्यास—फिर मन लगाकर सुनो।

भीष्म—सुन रहा हूँ।

व्यास—सुनो देवव्रत, वह महा संगीत गूँज रहा है कि " दूसरोंके लिए स्वार्थका त्याग ही सब धर्मोंकी जड़ है। "

भीष्म—त्याग ऋषिवर ?

व्यास—हाँ त्याग। देवताके चरणोंमें हँसते हँसते अपने सुखका बलिदान। यही परम धर्म है। यही सनातन धर्म है। और जितने धर्म है, सब इसीकी सन्तान है।

भीष्म—देवताके चरणोंमें अपने सुखका बलिदान ?

व्यास—हाँ, देवताके चरणोंमें अपने सुखका बलिदान—यही महाधर्म है।

भीष्म—और वह देवता कौन है ?

व्यास—मनुष्य।

भीष्म—मनुष्य अपने सुखका बलिदान क्यों करे ?

व्यास—परम सुख—सबसे बड़ा सुख—पानेके लिए।

भीष्म—प्रभो, वह सुख क्या है ?

व्यास—विवेककी जयध्वनि, आत्माका सन्तोष, मनुष्यका आशीर्वाद—यही वह महासुख है। स्वार्थ-त्यागसे मिलनेवाली परम शान्ति ही वह महासुख है। इसके आगे स्वार्थ-सिद्धिका साधारण सुख फीका पड़

जाता है। वैसे ही फीका पड़ जाता है, जैसे सूर्यका उदय होनेपर चन्द्रमाका बिम्ब। स्वार्थके बलिदानसे मनुष्यकी जय होती है—सभ्यता आगे बढ़ती है। सभ्यताका सार अंश यही है। इस महान् उद्देश्यके लिए अपने कर्तव्यका पालन करनेमे ही महासुख है, देवव्रत।

भीष्म—समझ रहा हूँ प्रभो।

व्यास—मनको स्थिर करके इस मन्त्रका जप करो। धीरे धीरे स्पष्ट—खूब ही स्पष्ट—यह सगीत सुन पडेगा। यह वह संगीत है, जिसमे सारी पृथ्वीके सब संगीत सम्मिलित होकर समस्वरसे बज उठते है। यह वह साम-गान है, जो मधुर वशीके शब्दसे आरभ होकर प्रबल शृगनादके रूपमे समाप्त होता है।—मन्त्रका जप करो।

भीष्म—जो आज्ञा मुनिवर।

व्यास—सन्ध्याकाल आ गया। आश्रमके भीतर चलो।

(दोनोका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—नर्मदाका एक खेवा-घाट

[धीवर-राजकी कन्या सत्यवती अकेली टहल रही है]

सत्यवती—सूर्य अस्त हो गये,—परदेसीके हृदय-पटमे बाल्य-स्मृतिके समान, धीरे धीरे सैकडो चमकीले नक्षत्र एक एक करके आकाशमे प्रकट होते जा रहे है। आज उसी शोभापूर्ण सन्ध्याकालकी याद आ रही है, यमुनाके जलमे मै अकेली नावपर बैठी थी। एक श्यामवर्ण लम्बे डीलडौलवाले ऋषिने किनारेपर आकर कहा—"सुन्दरी, मुझे उस पार

पहुँचा दो और उसके बदलेमें आशीर्वाद लो।" उनकी लंबी दाढ़ीके सफेद बाल हवासे हिल रहे थे—उनके स्वरसे करुणा और कातरताका भाव प्रकट हो रहा था। मैंने नाव किनारेसे भिड़ा दी और ऋषिवरको उसपर चढ़ा लिया। नदीके जलमे नाव बह चली। मै तन्मय-सी होकर नदीके जलमे सन्ध्या-कालकी शोभाका प्रतिबिंब देख रही थी—नदीकी लहरोका मधुर शब्द सुन रही थी। एकाएक मेरे—

[सखियोका प्रवेश]

१ सखी—लो बहन, मत्स्यगन्धा तो यहाँ है!

२ सखी—और अकेली है।

३ सखी—चलो सखी, घर चलो।

४ सखी—घर चलो सखी।

सत्यवती—मै आती हूँ, तुम चलो।

१ सखी—यह क्या! हम तुमको इस समय यहाँ अकेले छोड़कर भला जा सकती हैं!

सत्यवती—मैंने कह दिया, तुम चलो। (रूखे स्वरसे) दिक क्यो करती हो!

२ सखी—यह क्यो! क्रोध क्यो करती हो सखी, हमसे क्या कसूर हुआ?

सत्यवती—(नर्म होकर।) तुमने कुछ कसूर नहीं किया सखियो, मेरे इस रूखेपनके लिए मुझे क्षमा करो प्यारी सखियो। (हाथ जोड़ती है)

३ सखी—यह क्या करती हो राजकुमारी?

सत्यव०—सचमुच मैं तुमसे क्षमाकी प्रार्थना करती हूँ।

४ सखी—अच्छा हमने माफ किया। अब घर चलो।

सत्यव०—तुम मुझे प्यार करती हो?

१ सखी—(हँसकर) प्यार करती है?—कौन कहता है?

२ सखी—प्यार करती है? बिलकुल नही—जरा भी नहीं।

३ सखी—तुमको हम सब दुश्मनकी नजरसे देखती हैं।

४ सखी—हम प्यार करती है या नही, यह पूछ रही हो?

सत्यवती—मै सच कहती हूँ, अगर प्यार करती हो, तो अब इस पापिनी धीवर-कन्यासे घृणा—घृणा करो।

१ सखी—यह तुम क्या कह रही हो?

सत्यव०—तुम क्या जानती हो कि मै कौन हूँ?

२ सखी—जानती है—सत्यवती हो।

सत्यव०—और कुछ जानती हो?

३ सखी—तुम धीवर-राजकी कन्या हो और तुम्हारी जवानी सदा बनी रहेगी।

सत्य०—और कुछ जानती हो?

४ सखी—बस, और तो कुछ नही जानती।

सत्य०—तो फिर तुम कुछ नही जानती, और न कभी जानोगी।—जाओ प्यारी सखियो, सब घर चली जाओ, मैं नही जाऊँगी।

१ सखी—क्यो?

सत्य०—यह नही बताऊँगी।

२ सखी—क्यो?

सत्य०—इस 'क्यो' का ठीक उत्तर कभी नही पाओगी। जाओ, घर लौट जाओ। मै नहीं जाऊँगी। मेरे घर-द्वार कुछ नही है।

१ सखी—ऐ ! तुम रोक क्यो रही हो सखी ?

सत्य०—ना ना, तुम जाओ ।

२ सखी—यह क्या ! तुम्हारी यह क्या हालत है ?

(सत्यवती चुप रहती है)

३ सखी—मत्स्यगन्धा, चुप क्यो हो ? क्या सोच रही हो सखी ?

४ सखी—सच तो है, क्या सोच रही हो सखी ?

सत्य०—कुछ नहीं ।

३ सखी—बताती क्यो नही हो ?

सत्य०—मै खुद नही जानती, क्या सोच रही हूँ ।

३ सखी—बताओगी नही सखी ?

४ सखी—देखती हूँ कि निर्मल सुन्दर सबेरेके समय दूरके श्यामरंग पहाड़ोकी ओर तुम टकटकी लगाकर उदास दृष्टिसे बहुत देर तक ताका करती हो। एकाएक तुम्हारी दोनो ऑखोसे गर्म ऑसुओकी दो बूँदे, दो जोड़िया बहनोकी तरह, सहानुभूतिसे निकल पड़ती हैं । मै अक्सर देखती हूँ कि कभी कभी कुछ कहते कहते तुम रुक जाती हो—जैसे बजते हुए सितारका तार एकाएक टूट जाय। बोलो सखी, तुम्हारा यह कैसा भाव है ? इसका क्या कारण है ?

सत्य०—कुछ नहीं—कुछ नहीं—घर चलो सखियो। कौन था मेरा ? कब ? कहॉ ? कुछ नहीं ।

(इसी बीचमे धनुष्य-बाण हाथमें लिये राजा शान्तनु आकर दूरपर खड़े खड़े सब देखते और सुनते हैं । सत्यवती धीरे धीरे सखियोंके साथ जाती है और शान्तनु खड़े रहते है ।)

[दो धीवरोंका प्रवेश]

१ धीवर—आज कुछ भी हाथ नही लगा ।

२ धीवर—हाँ कुछ भी नही लगा ।

१ धीवर—चलो, घर लौट चले ।

२ धीवर—चलो ।

१ धीवर—अच्छा क्योंजी, यह रात है या दिन ?

२ धीवर—रात है ।

१ धीवर—तो फिर अँधेरा क्यो नहीं है ?

२ धीवर—देखते नही, चाँद निकला है ।

१ धीवर—ठीक है । लेकिन यह चॉद कैसा भयानक है !—मानो जल रहा है ।

२ धीवर—सच कहते हो !—ओह इसकी ओर तो देखा नहीं जाता !

१ धीवर—अच्छा, बताओ भाई, चाँदसे अधिक उपकार होता है, या सूर्यसे ?

२ धीवर—सूर्यसे ।

१ धीवर—अरे दूर हो !

२ धीवर—क्यो ?

१ धीवर—चॉदसे अधिक उपकार होता है ।

२ धीवर—कैसे ?

१ धीवर—अरे देखते नही हो भाई, चॉद न होता तो बड़ा विकट अँधेरा होता । चॉद ही तो अँधेरी रातमे उजियाला करता है।

२ धीवर—और सूर्य ?

१ धीवर—वह तो दिनको उजियाला करता है । दिनको तो सूर्यकी जरूरत ही नही है ।

२ धीवर—तुमने तो खूब सोचा ।

१ धीवर—सोचते सोचते ही तो दुबला हो गया हूँ।

(यह धीवर खूब मोटा-ताजा था)

२ धीवर—सो तो देख ही रहा हूँ।

१ धीवर—अरे अरे, वह कौन है ?

२ धीवर—कहाँ ?

१ धीवर—(शान्तनुकी ओर उँगलीसे दिखाकर) वह—वह !

२ धीवर—आदमी है।

१ धीवर—जीता है ?

२ धीवर—नही रे, मर गया है।

१ धीवर—कैसे जाना ?

२ धीवर—बिल्कुल हिलता-डुलता नहीं है। जीता आदमी तो हिलता डुलता है ?

१ धीवर—और मरा आदमी शायद ताड़के पेड़की तरह सीधा खड़ा रहता है ?

२ धीवर—यह भी सच है। तब तो—गड़बड़झालेमे डाल दिया !

१ धीवर—बहुत बड़े गड़बड़झालेमें। इसका सुलझना सहज नहीं है।

२ धीवर—कैसे सुलझेगा !—अगर यह आदमी जीता है, तो फिर हिलता डुलता क्यो नहीं ?

१ धीवर—किसने इसे न हिलने-डुलनेके लिए अपने सिरकी कसम रखाई है !

२ धीवर—और अगर मर ही गया है, तो फिर स्वाँगकी तरह यों खड़ा कैसे है ? ऐसा तो कभी देखा नहीं।

१ धीवर—हाँ, याद तो नहीं पड़ता कि कभी ऐसा देखा है।

२ धीवर—यह संदेह दूर कैसे हो ?

१ धीवर—दूर होते तो नहीं देख पड़ता।

२ धीवर—अच्छा, इसी आदमीसे पूछा जाय तो कैसा ?

१ धीवर—(चिन्तित भावसे) हॉ—यह तो कुछ ठीक जान पड़ता है।

धीवर—तो चलो पूछें।

(दोनों शान्तनुके पास जाते हैं)

१ धीवर—एजी ! एजी !

२ धीवर—ओ भले आदमी !

१ धीवर—बोलता भी नहीं है !

२ धीवर—तो फिर मर ही गया होगा !

१ धीवर—तो यही क्यों नहीं कह देता कि मैं मर गया हूँ। हम निश्चिन्त होकर अपने घर चले जायँ।

धीवर—ना, गड़बड़झाला जैसेका तैसा बना रहा। चलो घर चलें।

(दोनोंका प्रस्थान)

शान्तनु—बरसातकी बढ़ी हुई नदी अपने दोनो किनारोंको छापकर वेगसे बही जा रही है। शरद् ऋतुका पूर्ण चन्द्रमा उदय हो आया है। कोकाबेलीके उज्ज्वल फूल खिल रहे हैं। कोई त्रुटि नहीं है, कोई कमी नहीं है। स्वर्गकी-सी इस सुन्दर ज्योतिमें वह सुन्दरी कौन थी ? किसकी कन्या थी ? उसका घर कहाँ है ?—इधर ही तो शायद गई है। इसके रहनेकी जगहका पता मुझे कौन बतावेगा ?

[माधवका प्रवेश]

माधव—मित्र, मृग भाग गया।

शान्तनु—भाग जाने दो। लेकिन मैंने एक अपूर्व सुन्दरी नारी देखी है।

माधव—कौन नारी ?

शान्तनु—यह मै नही जानता—

माधव—ओह, तभी तो मै हैरान था कि तुम्हे हो क्या गया हे।

शान्तनु—ओह !

माधव—लेकिन जानते हो, वह धीवरकी लड़की है ।

शान्तनु—तुमने देखी है ?

माधव—देखी है ।

शान्तनु—मुझे उसका घर दिखा सकते हो ?

माधव—वहाँ जाकर क्या करोगे ?

शान्तनु—यो ही जरा उसके पितासे मिलना चाहता हूँ ।

माधव—समझ गया । चलो, इस राहसे चलो ।

(दोनोंका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—धीवरराजके रहनेका घर

समय—प्रातःकाल

[धीवर-राज बड़े ही क्रोधके भावसे टहल रहा है ।
उसका मन्त्री भी उसके पीछे पीछे है।]

धीवर०—मै खफा हूँ—बहुत ही खफा हूँ । रानीका ही दिमाग खराब नहीं है । लेकिन अगर घर-भरका—नहीं इतना—नहीं, मै कल ही राज्य छोड़कर चला जाऊँगा ।

मन्त्री—जी हुजूर—

धीवर०—मै ‘ जी हुजूर ’ नही चाहता, काम चाहता हूँ। काम अगर नही कर सकते, तो चले जाओ।

मन्त्री—जी—काम करूँगा नही तो क्या।

धीवर०—‘ तो क्या ’—सबके मुँहसे यही एक बात सुन पड़ती है—‘ तो क्या ’। मुझे नही जान पड़ता, ‘ तो क्या ’ मै ऐसा क्या विशेष गुण है। मै—नही, मै अपनी जान दे दूँगा।

[धीवर-राजकी रानीका प्रवेश]

धी० रानी—दोगे तो दे दो।—ये जान दे देगे! जान दे देना ऐसी ही सहज बात है न!—जान दे देगे!—रोज ही तो जान दे देनेकी धमकी देते हो। लेकिन जान देते एक दिन भी न देखा। जान दे देगे। दे न दो। दे दो—मेरे सामने जान दो। आज ही जान दे दो। अभी। दे दो।—चुप क्यो हो गये? जान दे दो।

धीवर०—तो दे दूँ?

धी०रानी—दे दो।

धीवर०—तो फिर मन्त्री, जान दे दूँ? दे दूँ?

मन्त्री—जी नही ऐसा कोई करता है!

धीवर०—कोई ऐसा नही करता?—सुना रानी, मन्त्री मना कर रहा है। नही तो मै आज निश्चय जान दे देता।

धी०रानी—क्यो! (मन्त्रीसे) तुम क्यो मना करते हो? तुम मना करनेवाले कौन? मै रानी हूँ—मै हुक्म देती हूँ। मेरे हुक्मको टुलखते हो! जाओ, मै तुमको तुम्हारे कामसे बरतरफ करती हूँ।

धीवर०—कैसे !—मन्त्री न होगा, तो राज्यका काम किस तरह चलेगा !

धी० रानी—बहुत बड़ा भारी राज्य है न तुम्हारा ! धीवरोंके चौधरी हो । बस, इतनेहीसे राजा हो गये ! राज्य—एक गाँव और नदीका आधा हिस्सा, यही तो राज्य है न ? नदी या तालाबमे जाल डालकर मछली पकड़ना—बस यही तो राज-काज है ? लगे डरवाने कि " राज्यका काम किस तरह चलेगा ? " राज्यका काम मै चलाऊँगी । तुम जान दे दो ।

धी०—तुम्हारे कहनेसे दे दूँ ?—रानी, भीतर जाओ ।

धी० रानी—ओ जलमुँहे ! ओ अभागे ! इस मन्त्रीके सामने अपना रौब दिखा रहा था—जान देनेको धमका रहा था !—मै रानी हूँ, मेरी बातको टुलखता है ! ओरे धूर्त निगोड़े—

धीवर०—छी छी छी ! बेहूदा—बिलकुल बेहूदा—रानी !

धी० रानी—निकल—निकल घरसे । नही तो—

धीवर०—नही तो—क्या करोगी ?

धी० रानी—नही तो झाड़ मारकर निकालूँगी ।

धीवर०—झाड़ मारकर निकालोगी ?

धी० रानी—झाड़ मारकर निकालूँगी ।

धीवर०—क्या, झाड़ मारकर निकालोगी ?

धी० रानी—हाँ हाँ, झाड़ मारकर निकालूँगी ।

धीवर०— भला किसीने सुना है कि किसी देशकी रानीने कभी उस देशके राजाको झाड़ू मारकर निकाला है !-मन्त्री, तुमने सुना है ?

मन्त्री—जी नहीं ।

धी० रानी—अच्छा तो अब देख ले। (प्रस्थान)

मन्त्री—राजासाहब, खिसक जाइए। अभी समय है, पहलेहीसे खिसक जाइए। रानी बहुत खफा है!

धीवर०—क्या! मैं राजा हूँ। राजा होकर एक औरतके डरसे खिसक जाऊँगा—भाग जाऊँगा? कभी नहीं। अरे कोई है? मेरी कमान और तीर तो ले आ। और—

मन्त्री—कुछ न कर सकिएगा—कहता हूँ खिसक जाइए। कुछ न कर सकिएगा।

धीवर०—ऐसी बात है?

मन्त्री—कह तो रहा हूँ, बस खिसके जाइए।

धीवर०—अच्छा, जब तुम कह रहे हो और तुम मेरे मन्त्री हो, तब तुम्हारा कहा न टालूँगा। (जाना चाहता है।)

[शान्तनु और माधवका प्रवेश]

माधव—यही शायद धीवर-राज है!—महाशय, आप ही क्या यहाँके राजा है!

धीवर०—नहीं तो क्या तुम राजा हो? देखो—लोग खबर दिये विना—इस तरह मेरे पास आकर खड़े हो गये! और फिर एकदम आकर पूछने लगे—'महाशय, आप ही क्या यहाँके राजा है?' यह तुम्हारा कैसा बर्ताव है? जानते हो, मेरे पास जो लोग आते है, वे क्या करते है?

माधव—जी नहीं, सो तो नहीं जानता।

धीवर०—वे लोग पहले इस मन्त्रीके फुफेरे सालेको भेट भेजते है।

माधव—जी, फुफेरे सालेको?

धीवर०—हॉ, फुफेरे सालेको। उसके वाद मन्त्रीके मौसेरे भाईके ससुरके सामने हाथ जोड़कर खड़े होते हैं।

माधव—बापरे! इतना अदव कायदा है!

धीवर०—मै राजा हूॅ।—क्यो मन्त्री?

मन्त्री—जी राजासाहव।

माधव—इस वातको कौन नहीं मानता!

धीवर०—मानते हो?

माधव—खैर मान लिया।

धीवर०—इस 'खैर' का क्या माने?—मन्त्री!

मन्त्री—जी—इस 'खैर' का मतलव तो मैं भी अच्छी तरह नही समझा।

धीवर०—यहॉ 'खैर-फैर' कहनेसे काम नही चलेगा। मैं राजा हूॅ, अव कहो, क्या कहना चाहते हो?

माधव—अव मै यह कहना चाहता हूॅ कि—मेरे प्यारे मित्र—आपकी लडकीसे विवाह करना चाहते है।

धीवर०—व्याह!

माधव—व्याहकी जरूरत तो नहीं थी; लेकिन इनका यह न जाने कैसा कुसंस्कार है। इस जगहपर इनमें जरा कवितांकी कमी है। आप व्याह कर देनेके लिए राजी हैं?

धीवर०—मन्त्री!

मन्त्री—आपके मित्रके साथ हमारे राजासाहवको अपनी लडकीका व्याह कर देना होगा?

माधव—वस वस, आपने ठीक समझ लिया।

मन्त्री—अब सवाल यह है कि आपके मित्र है कौन ?

(धीवर-राज सिर हिलाता हुआ मन-ही-मन मन्त्रीकी बुद्धिको सराहता है।)

माधव—इस सवालको मै अभी हल किये देता हूँ। मेरे मित्र है हस्तिनापुरके राजा।

मन्त्री—(आश्चर्यसे) हस्तिनापुरके राजा!

माधव—जी हाँ।

मन्त्री—हस्तिनापुरके महाराज ?

माधव—हाँ साहब, हाँ।

मन्त्री—महाराज शान्तनु ?

माधव—बिल्कुल ठीक।

मन्त्री—(धीवर-राजसे) सिंहासनसे उठ बैठिए—सिंहासनसे उठ बैठिए।

धीवर०—क्यो ? क्यो ? सिंहासनसे क्यो उठूँ ?

मन्त्री—पहले उठ बैठिए, फिर कुछ कहिएगा। नही तो—

धीवर०—नही तो क्या ?

मन्त्री—नही तो बस राज्य गया समझिए।

धीवर०—ऐ ! ऐ !—सचमुच, नही तो राज्य गया ? (कुछ उठकर) नही तो राज्य गया ?

मन्त्री—उठिए !

(धीवर-राज सिंहासनसे उठकर खडा हो जाता है।)

मन्त्री—महाराज हस्तिनापुरनरेश, हमारा जन्म आज सफल हुआ। आप इस सिंहासनको ग्रहण कीजिए।

धीवर०—(आश्चर्यसे) सिंहासनको ग्रहण कीजिए ? यह क्या !

शान्तनु—इसकी जरूरत नही है। धीवर-राज, आप सिंहासनपर बैठिए।

धीवर०—(घबराये हुए भावसे) मन्त्री !–

मन्त्री—बैठिए, महाराज खुद आज्ञा दे रहे है–बैठ जाइए।

(धीवर-राज बैठ जाता है)

माधव—अब हमारी प्रार्थना ?

धीवर—मन्त्री !

(मन्त्री धीवर-राजके कानमे कुछ कहता है।)

धीवर०—जरूर—महाराज, मैं अभी आता हूँ।

(मन्त्री और धीवर-राजका प्रस्थान)

माधव—जान पडता है, धीवर-राज अपनी स्त्रीसे सलाह करने गया है, महाराज, इस गॅवार उजड्डको देखकर भी क्या इसकी कन्याके साथ व्याह करनेको आपका जी चाहता है ?

शान्तनु—लेकिन हम लोगोको यह पता लगा है कि वह सुन्दरी इस धीवरकी कन्या नहीं है।

माधव—इसकी पाली हुई कन्या तो है! इस असभ्यसे उसने शिक्षा तो पाई है !

शान्तनु—सुना है, वह किसी ऋषिके वरदानसे अनन्त-यौवना है—उसकी जवानी सदा बनी रहेगी। वह समझदार और बुद्धिमती भी है।

माधव—हॉ, यह ठीक है। मगर इस प्रकारकी अज्ञातकुलशीलाके साथ व्याह करना युक्ति-संगत नहीं हो सकता महाराज।

शान्तनु—मित्र, मुझे यह सब सोचनेका अवकाश नहीं है। मैं उसे चाहता हूँ।

[धीवर-राज और उसके मन्त्रीका फिर प्रवेश]

माधव—रानीने क्या निश्चय किया ?

धीवर०—रानीने क्यो ?

मन्त्री—महाराजके कोई पुत्र मौजूद है ?

माधव—बेशक ।

मन्त्री—वही तो !

माधव—' वही तो ' क्या !

मन्त्री—राजासाहब, वही तो !

धीवर०—वही तो !

माधव—राजासाहब, यह ब्याह कर देना क्या आपको मंजूर है ?

धीवर०—वही तो ।

माधव—तो नामंजूर है ?

धीवर०—वही तो !—क्यों मन्त्री ?

मन्त्री—वही तो !

धीवर०—वही तो ।

माधव—मजूर है या नामंजूर ?

मन्त्री —वही तो ।

धीवर०—वही तो ।

माधव—एक जवाब दीजिए ।

धीवर०—वही तो ।

माधव—यही क्या तुम्हारा आखरी जवाब है ?—बस ' वही तो ' ?

धीवर०—मन्त्री ।

(मन्त्री धीवर-राजके कानमे कुछ कहता है ।)

धीवर०—सुनो, मेरी यह जिद है कि प्राण रहे चाहे जायॅ, मेरी लड़कीका लड़का ही बादको राजा हो । इस शर्तपर क्या महाराजका

ब्याह करना मंजूर है ?—सीधीसी बात है ।—मन्त्री, कहो—समझा-कर कहो ।

मन्त्री—महाराज, हमारे राजासाहबकी यह प्रतिज्ञा है कि महा-राजके बाद इस कन्यासे पैदा हुआ लड़का ही हस्तिनापुरकी गद्दीका राजा हो । इसपर क्या आप राजी है ?

शान्तनु—नही—सो—कैसे होगा ? हमारा बडा लड़का मौजूद है ।

मन्त्री—तो फिर महाराज शान्तनु, यह ब्याह नही हो सकेगा ।

शान्तनु—यही क्या तुम्हारे राजाका स्थिर संकल्प है ?

धीवर०—हाँ—यही—मेरा क्यो मन्त्री—स्थिर संक—अभी क्या कहा था ?

माधव—सकल्प । चलिए महाराज । क्या !—आप क्या सोच रहे है ?

शान्तनु—धीवरराज, आपकी मर्जीके खिलाफ मै आपकी कन्यासे ब्याह नहीं करना चाहता । कुँआरी कन्यापर पिताका अधिकार होता है । धीवर-राज, तो फिर जाता हूँ ।—आओ मित्र ।

(शान्तनु और माधवका प्रस्थान)

धीवर०—मन्त्री !

मन्त्री—जी ।

धीवर०—मुझे भीतर ले चलकर बिछौनेपर लिटा दो । लेट रहूँ । नही तो—नहीं तो—

मन्त्री—नही तो ?

धीवर०—नहीं तो शायद यह आँखे बन्द हो जायँगी, दन्त-कपाट लग जायँगे ।

(मन्त्री लेकर जाता है)

———

॑था दृश्य

स्थान—　　　　　पुरके महलका एक हिस्सा।

—प्रातःकाल

[भीष्म अकेले　　　भेसे पीठ लगाये खडे हैं।]

भीष्म—पराये हितके　　　पने स्वार्थका त्याग ही सब धर्मोंकी जड है। व्यासदेवका बताये　　मधुर सगीत निरन्तर अन्तःकरणमे ध्वनित हुआ करता है। वह धीरे धीरे हृदयमे शक्तिको जमा करता हुआ, नदीका कल-नाद जैसे बाढ़ियाके गंभीर शब्दका रूप धारण करता हुआ सुन पड़े, वैसे सुन पड़ रहा है।

(आप ही आप बडबडाते हुए माधवका प्रवेश)

माधव—इसीको कहते है—"घरका खाकर वनके ढोर चराना।" अरे, वह अनन्तयौवना है तुम्हारा क्या ?

भीष्म—चाचा, आप आप-ही-आप क्या कह रहे है ?

माधव—(जैसे सुना ही नहीं) उसके लिए न तुम खाते हो—न पीते हो; न ऑखोमे नीद है—न और कोई चिन्ता है; दिन दिन गिरगिटके समान दुबले होते चले जा रहे हो—इस लिए कि वह अनन्तयौवना है। अरे भाई, वह अगर सदा जवान रहेगी, तो इसमे तुम्हारा क्या ?

भीष्म—कौन सदा जवान रहेगी ?

माधव—(उसी भावसे) उसी दिनसे मुरझाये जा रहे है।

भीष्म—कौन ?

माधव—और कौन ? तुम्हारे बाप।—ए लो ! कही दिया।

भीष्म—हॉ चाचाजी पिताजीको क्या हो गया है ?

माधव—कही दूॅ। और कबतक दबा रक्खूॅगा ! आग कब तक दबी रह सकती है ! राज्यमे अशान्ति है, घरमे अशान्ति है और

जाड़ेके दिनोंमे खुली छतपर लेटने, च तरफ देखने और लंबी लंबी साँसे लेनेसे हो गया है राजाको शि (तपेदिक)। क्यो ? इस लिए कि—

भीष्म—(आग्रहके भावसे) च हिए तो, पिताजीकी यह दशा क्यो हुई है ? आप जानते हैं

माधव—अरे—जानता क्ये सब जानता हूँ।

भीष्म—तो बताइए न। मै उनसे इसका कारण पूछता हूँ, तो वे कुछ उत्तर ही नही देते है।

माधव—यही तो बात है। इधर तो हस्तिनापुरके राजा—भारतके सम्राट् है, लेकिन उधर बेचारे बहुत सीधे और आवश्यकतासे अधिक शरमीले है।

भीष्म—क्या हुआ है, बताइए न ? पिताजी धीरे धीरे पीले दुबले और उदास क्यो होते जाते हैं ?

माधव—इसका कारण, बस उससे विवाह करना चाहते है।

भीष्म—किससे ?

माधव—किससे क्या ? एक धीवरकी लडकी है। मगर ऋषिके वरदानसे वह कभी बूढ़ी न होगी। उसीसे ब्याह करनेके लिए राजा पागल हो रहे है—वज्रमूर्ख हैं।

भीष्म—तो फिर पिताजी उससे ब्याह क्यो नहीं कर लेते ?

माधव—यह भी उनका एक भलमंसीका कुसंस्कार है। क्षत्रिय राजाधिराज हो—इच्छा हुई है—तरवार खींच लो—इच्छा पूरी कर लो। सो न करके उलटे कन्याके पिताके पैरो-पडना भर बाकी रहने दिया। मै साथ न होता तो शायद वह भी बाकी न रहता—पैरो भी पड़ जाते।

भीष्म—लड़कीका बाप कौन है ?

माधव—और कौन होगा ?—एक धीवरोका चौधरी है ! धीवर-राज है ! मालूम नही यह 'राजा' की पदवी उसे किसने दी है ।

भीष्म—तो लडकीका बाप क्या पिताजीके साथ अपनी लडकी-का व्याह करनेको राजी नही है ?

माधव—देखनेसे तो नहीं ही जान पडा !—उसने कहा कि उस लड़कीके जो लडका होगा वही राजगद्दी पावेगा, यह प्रतिज्ञा अगर महाराज कर सके तो वह उनके साथ अपनी लडकीका व्याह कर सकता है ।

भीष्म—पिताजी इसपर राजी नही हुए ?

माधव—राजी कैसे होगे ? अपने सुयोग्य बड़े लडकेको, अर्थात् तुमको, राजा न बनाकर—राजा बनावेगे एक धीवर-कन्याके लड़केको —जिसके शरीरसे मछलीकी गन्ध आती है । जाऊँ वैद्यको ले आऊँ । जान पड़ता है, महाराज बहुत दिन जीयेगे नही । मुझे तो यही—

(प्रस्थान)

भीष्म—इतना ही !—हाय पिताजी, तुम मेरे लिए दुःख उठा रहे हो ! मेरे लिए रोगी, दीन, मलिन और कातर हो रहे हो। पिताजी, तुम नही जानते, मै तुम्हारे एक इशारेसे असाध्य साधन कर सकता हूँ ! मेरे प्यारे पिता, तुमने अपने मुँहसे यह बात मुझसे क्यो नही कही ! इस अधम पुत्रके ऊपर तुम्हे इतना स्नेह—इतना स्नेह है !—मै भी दिखा दूँगा पिताजी कि मै इस अथाह स्नेहके अयोग्य नही हूँ ।—इतना दु.ख मेरे लिए !—मै तुम्हारे सुखके चरणोमे अपने प्राणोका बलिदान कर सकता हूँ ।

(प्रस्थान)

(आकाशमे महादेव और पार्वतीका प्रवेश)

महादेव—आज मनुष्य-जातिके इतिहासमे एक नये अध्यायका आरभ हुआ। पार्वती, देखो, यह जो लबे-चौडे डीलका, गोरे रगका, सुन्दर युवक चिन्तामे डूबा हुआ खडा है, ससारको एक नया गभीर संगीत सुनावेगा! वह सगीत, जिसे आजतक कभी किसीने नही सुना।

पार्वती—कौनसा संगीत प्राणनाथ?

महादेव—स्वार्थत्यागका सगीत—यह त्याग सूखी तपस्या, शास्त्रके विचार या धर्मके प्रचारमे ही सीमाबद्ध नही है। यह त्याग कर्मके मार्ग-मेसे होकर जगत्‌के हितके लिए फैला हुआ है। प्रिये, यह युवक त्यागके मन्त्रको वेदवाक्य द्वारा नही, जीवन-भरके अनुष्ठानके द्वारा जगत्‌को सुनावेगा!

पार्वती—यह युवक? इसका नाम?

महादेव—देवव्रत।

पार्वती—इसका पिता कौन है?

महादेव—राजाधिराज शान्तनु।

पार्वती—इसकी माता कौन है?

महादेव—तुम्हारी सौत, गगा।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—धीवर-राजका घर

समय—प्रातःकाल

[धीवरराज, मन्त्री और भीष्म खड़े हैं।]

धीवर०—ये हस्तिनापुरके राजाके लड़के हैं?

मन्त्री—हाँ, यही हस्तिनापुरके युवराज है।

धीवर०—(भीष्मसे) तुम्हारा नाम क्या है ?

भीष्म—देवव्रत ।

धीवर०—अच्छा नाम है । सो यहाँ भैया किस लिए आये हो ?

भीष्म—आत्म-बलिदान देने ।

धीवर—क्या देने ?

भीष्म—आत्म-बलिदान ।

धीवर०—यह कौनसी चीज है ?—मन्त्री !

मन्त्री—युवराजजी अपनी प्रार्थना सीधी सादी भाषामे कहिए । आप क्या चाहते है ?

भीष्म—धीवर-राजकी कन्याको ।

धीवर०—मगर तुम तो अभी कहते थे कि न-जाने क्या देने आये हो ?

(मन्त्री धीवर-राजके कानमे कुछ कहता है ।)

धीवर०—तो ये सहज भाषामें क्यो नही कहते ? तुम्हारा अब तक ब्याह नही हुआ ?

भीष्म—मै अविवाहित हूँ ।

मन्त्री—अर्थात् आपका ब्याह नही हुआ । यही तो ?

भीष्म—हॉ ।

धीवर—मन्त्री, (अलग जाकर मन्त्रीसे सलाह करके) तो तुम्हारे साथ ब्याह कर देनेसे इस सत्यवतीका लड़का ही तो राजा होगा न ?

भीष्म—आप गलती कर रहे है धीवर-राज, मै आपकी कन्यासे खुद ब्याह करनेके विचारसे यहॉ नही आया । मै उन्हे मातृ-पदके लिए वरण करने आया हूँ ।

धीवर०—अब और यह क्या कहा !—मन्त्री, तुम इनके साथ बातचीत करो। मै इनकी बातको बिल्कुल नही समझ पाता।

मन्त्री—युवराज, अनुग्रह करके जो कुछ कहना हो सीधी भाषामे कहिए।—“ मातृपदके लिए वरण करने आया हूँ ” इसके क्या माने?

भीष्म—मै धीवर राजकी कन्याको अपनी माता बनानेके लिए मॉगने आया हूँ।

धीवर०—यह आदमी पागल जान पड़ता है—मन्त्री !

मन्त्री—लेकिन युवराज, महाराज शान्तनुके साथ सत्यवतीके व्याहकी निष्फल बातचीत तो एक बार हो चुकी है।

भीष्म—मन्त्रीजी सो मै जानता हूँ।

मन्त्री—फिर ?

भीष्म—मै उस व्यर्थ प्रार्थनाको लेकर फिर आया हूँ। पिताजी इस कन्याके होनेवाले पुत्रको राज्य देना अस्वीकार कर गये थे, क्यो न?

मन्त्री—जी हॉ, आप ठीक कह रहे है।

भीष्म—उन्होने मेरे ही लिए यह बात नही स्वीकार की थी। मै महाराजका अकेला लड़का हूँ।

मन्त्री—सुन चुका सो युवराज।

भीष्म—अब मै उस प्रस्तावको स्वीकार करता हूँ।

मन्त्री—मगर महाराज शान्तनुने नामजूर कर दिया है।

भीष्म—उससे क्या बनता-बिगडता है? राज्यपर दावा मेरा है। मै उस दावेको छोड़े देता हूँ।

मन्त्री—(विस्मयके भावसे) आप राज्यपरसे अपना दावा छोड़े देते है?

भीष्म—हॉ, छोड़े देता हूँ।

मन्त्री—अपनी इच्छासे ?

भीष्म—हाँ, अपनी इच्छासे !

धीवर०—पागल है पागल !

मन्त्री—आश्चर्य है ।

भीष्म—जगत्‌मे कुछ भी आश्चर्य नही है मन्त्रीजी, जो जिस कामको कर नही सकता, उसे वह आश्चर्य समझता है। एकके लिए जो कठिन या असाध्य है, वही दूसरेके लिए सहज है। इसके सिवा किसीके लिए आज जो कठिन है, वही कल सहज हो सकता है। इसीसे कहता हूँ, जगत्‌मे आश्चर्य कुछ नही है।

मन्त्री—आप, अपने राज्यके दावेको छोड देते है ?

भीष्म—हाँ छोड़े देता हूँ।

मन्त्री—अच्छी तरह सोचकर देख लिया है युवराज ? मुट्ठीमे आया हुआ एक राज्य—जिस राज्यके लिए सभ्य जातियाँ लड़ मरती है, आदमी आदमीका खून करता है, भाई भाईकी हत्या करनेको तैयार हो जाता है, बेटा भी बापका दुश्मन बन जाता है—उसी राज्यका दावा आप छोड़े देते है ?—एक बार फिर सोचकर देखिए।

भीष्म—उसे मै मुट्ठीभर धूलकी तरह छोड़ देता हूँ।

मन्त्री—किस लिए ?

भीष्म—पिताकी प्रसन्नताके लिए।

मन्त्री—इसी समय ?

भीष्म—इसी समय।

धीवर०—युवक, तुम्हारा सिर फिर गया है।

भीष्म—नही धीवरराज, मेरा सिर नही फिरा। मेरी परीक्षा करा लो। आज मुझसे बढ़कर सुस्थ, स्थिर-संकल्प (अपने इरादेपर दृढ़),

और व्यवस्थितचित्त (होशहवासमे) और कोई आदमी इस संसारमें नहीं है।

धीवर०—तुम सचमुच राज्य छोडे देते हो ?

भीष्म—सचमुच छोडे देता हूँ।

धीवर०—कसम खाते हो ?

भीष्म—कसम खाता हूँ।

(धीवर-राज फिर मन्त्रीसे सलाह करता है।)

धीवर०—अच्छी बात है ! तो मुझे अब इस व्याहमे कुछ उज्र नही है।

[धीवरकी रानीका प्रवेश]

धीवर रानी—उज्र है।

धीवर०—क्या उज्र है रानी ?

धी० रानी—चुप रहो। मैं रानी हूँ। मै कहती हूँ कि अभीतक मुझे उज्र है।

भीष्म—क्या ?

धी० रानी—तुम राज्यपर दावा नही कर सकते यह सच है; लेकिन वादको अगर तुम्हारे लडके-वाले राज्यपर दावा करे ?

धीवर०—यह भी ठीक है।

भीष्म—हॉ, वे कर सकते है। लेकिन उसके लिए मै क्या कर सकता हूँ ?

धी० रानी—तुम कर सकते हो। तुम अगर अपना व्याह न करो, तो वह खटका मिट सकता है।—क्यो मन्त्रीजी ?

मन्त्री—आपने ठीक कहा रानी साहव, व्याह ही न करेंगे तो लड़के-वाले कहॉसे होगे ?

भीष्म—ब्याहका विचार भी छोड़ना होगा ?

मन्त्री—इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है ।

भीष्म—(अर्द्ध स्वगत) मेरी इतने दिनोकी सचय की हुई चाह, मेरी एकान्तमे बढ़ाई गई आशा—वह भी त्याग करनी होगी ! यह तो बहुत ही कठोर त्याग है ! और उसके ऊपर पिण्ड-तर्पणसे हीन होकर अनन्तकालतक पुंनाम नरकमे निवास करना होगा ! यह काम तो बड़ा ही कठोर है ! बडा ही कठोर है !

मन्त्री—तो युवराज, आप इस बातपर राजी नही है ?

भीष्म—बड़ा कठोर है !—परन्तु क्या फिर मेरे त्यागका महाव्रत इस पहली परीक्षाके ही धक्केसे चूर हो जायगा ? मै क्या मनुष्य नहीं हूँ ?

धीवर०—तो तुम नामजूर करते हो ?

भीष्म—(घुटने टेककर और ऊपरकी ओर हाथ जोडकर) स्वर्गके देवगण, इस हृदयमे बल दो। मै तुच्छ मनुष्य हूँ—विषयोमे आसक्त और दुर्बल हूँ। शक्तिहीन और असहाय हूँ। देवगण, बल दो। इस हृदयकी वासनाको निर्दय निष्ठुर भावसे चूर चूर कर दो—पीस डालो। सारे अहंकारको दूर कर दो। सब स्वार्थको भस्म कर दो। मर्मस्थलको गहरे अन्धकारसे ढक दो—उसमे प्रकाशकी रेखा भी न रहने पावे। देवगण, शक्ति दो।

धी० रानी—पागल है ! पागल !

मन्त्री—युवराज, क्या निश्चय किया ?

भीष्म—(उठकर) धीवर-राज; मेरी इस दमभरकी दुर्बलताको क्षमा करो।—मन्त्री, निश्चय कर लिया। अपने ब्याहका इरादा भी मैने छोड़ दिया।

धी० रानी—कभी ब्याह नही करोगे ?

भीष्म—कभी ब्याह नही करूँगा।

मन्त्री—यही निश्चय है ?

भीष्म—यही निश्चय है। मैने अपने कर्त्तव्यके चरणोमे यह लोक और परलोक, दोनो अर्पण कर दिये। आजसे देवव्रत सच्चा संन्यासी है। वासनाकी केचली उसने छोड़ दी। सन्देहकी काली घटा उड़ गई। ऑधी थम गई। ऊपर केवल स्थिर नील आकाश है और नीचे उसके चरणोमे सागर गंभीर शब्दसे गरज रहा है।

धी० रानी—तो कसम खाते हो ?

भीष्म—मेरी इस प्रतिज्ञाके साक्षी सब देवता है।

धी० रानी—मैने कहा था न मन्त्री,—यह युवक पागल है!

भीष्म—ना मै पागल नही हूँ। मैने पिताको प्रसन्न करके सारे देवोको सन्तुष्ट किया है।—

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥

छट्ठा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुरके राजमहलका एक हिस्सा

समय—सन्ध्याकाल

[महाराज शान्तनु और उनका सखा माधव]

शान्तनु—मेरे लिए देवव्रतने संन्यास ले लिया!

माधव—देख तो यही रहा हूँ!

शान्तनु—आश्चर्य है!

माधव—बेशक आश्चर्य है!

शान्तनु—मेरा पुत्र इतना उच्चहृदय और उदार है। पुत्रके गौरवके गर्वसे आज मै फूला नहीं समाता।

माधव—लेकिन अपने लिए गर्व करनेको अब कुछ नही रहा।

शान्तनु—मेरे लिए मेरा पुत्र आज ब्रह्मचारी हो गया!

माधव—महाराज, इस सत्यके पाशसे अपने पुत्रको छुड़ा दीजिए।

शान्तनु—किस तरह?

माधव—आप इस धीवरकी कन्यासे विवाह न कीजिए।

शान्तनु—उसे धर्मच्युत होना पड़ेगा।

माधव—क्यो, कुछ उसने तो अपने मनसे आपको पति माना नहीं है?

शान्तनु—देवव्रतको दुःख होगा।

माधव—कुछ नही होगा। आप बूढ़े हो गये हैं। इस अवस्थामे यह सुन्दरी स्त्री लेकर आप क्या करेंगे महाराज! उसका ख्याल छोड़ दीजिए।

शान्तनु—किन्तु इस बुढ़ापेमे मुझे एक स्त्रीकी जरूरत तो है ही।

माधव—बहुतसे दास और दासियाँ सेवा करनेके लिए है।

शान्तनु—उनकी सेवामे स्नेह नहीं है।

माधव—और यह स्त्री आकर आपसे स्नेह करेगी? आप यह सोच रहे है? आप बूढ़े है, और वह, सुनता हूँ, ऋषिके वरदानसे अनन्तयौवन पाये हुए है। 'कलम' नहीं लगेगी!

शान्तनु—कैसे नही? खुद महादेवके—

माधव—महाराज, इच्छाके अनुकूल युक्तियाँ सदा ही मिल जाती है। महाराज, कहता हूँ, यह विचार न कीजिएगा। इसका बहुत ही बुरा होगा।

शान्तनु—मित्र, तुम मेरे ' विदूषक ' हो। मन्त्री नहीं हो।

माधव—ऐसा मन्त्री संसारमे पैदा ही नहीं हुआ जो इच्छाके विरुद्ध महाराजके आगे सफल युक्ति उपस्थित कर सके, विदूषक तो विदूषक ही है। महाराज, कहे देता हूँ, इसके लिए आपको पीछे पछताना पड़ेगा।

शान्तनु—पछताना पड़ेगा तो पछता लूँगा।

माधव—तो जाइए। सर्वनाशकी राह खुली है, जाइए।

(क्रोधके भावसे प्रस्थान)

शान्तनु—यह मूर्ख नीरस ब्राह्मण मुझे नसीहतें देने आया है!

[भीष्मका प्रवेश]

शान्तनु—प्यारे पुत्र, तुमने मेरे लिए-जन्मभरका ब्रह्मचर्य ग्रहण किया है?

भीष्म—पिताकी इच्छा ही मेरी इच्छा है।

शान्तनु—तुम्हारी इस भीष्म-प्रतिज्ञाके कारण देवोने तुम्हारा नाम भीष्म रक्खा है। और मै भी, पुत्र, तुम्हारी इस अपूर्व पितृ-भक्तिके पुरस्कारमे तुमको स्वेच्छा-मृत्युका वर देता हूँ। तुम जब चाहोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी।

भीष्म—पिताका आशीर्वाद शिरोधार्य है।

प्रस्थान

(दूसरी ओरसे चिन्तितभावसे शान्तनु भी जाते हैं)

सातवाँ दृश्य

स्थान—काशीके राजाका प्रमोद-वन

समय—सायकालसे कुछ पहले

[काशी-नरेशकी कन्या अम्बा एक पेडके नीचे पेडकी डालसे झुकी हुई खडी है]

अम्बा—इस समय उन्हींकी याद आ रही है।—वह तेजस्वी सुन्दर हस्तिनापुरका राजकुमार। इसी उद्यानमे उस घनी छायावाले बरगदके पेड़के नीचे पहले पहल अचानक ही उनका मुझसे साक्षात् हुआ था। मुझे देखकर उनकी ऑखोमे कितनी कुलीनतापूर्ण लज्जा समाविष्ट हो गई थी। उनका प्रदीप्त मुखमण्डल किस तरह कानोतक आरक्त हो गया था। ओहो, विधाताने मुझे कितना सौभाग्यशाली बनाया है कि वह भी मुझे प्यार करते है।

[दो सखियोका प्रवेश]

१ सखी—तुम यहॉ खड़ी हो?

२ सखी—हम तो खोज-खोजकर हैरान हो गई।

अम्बा—क्यो, मेरी क्या जरूरत है?

१ सखी—एक खबर है।

अम्बा—क्या खबर है?

२ सखी—सुनोगी तो खुश हो जाओगी।

अम्बा—तो फिर कहो।

१ सखी—कहे क्यो!

२ सखी—पहले बताओ, हमें दोगी क्या?

अम्बा—चीज देखकर उसके दाम लगाये जाते है।

१ सखी—तो कहे?

२ सखी—कह दे ?

अम्बा—कहो न ?

१ सखी—खबर यह है कि तुम्हारे वही !

२ सखी—हस्तिनापुरके युवराज—

१ सखी—उन्होंने आकर हमसे पूछा—राजकुमारी कहाँ है !

२ सखी—हमने कह दिया, बाहरके 'प्रमोद-वन' में है।

१ सखी—उसके बाद तुम्हारे प्रियतमने मेरी ओर ताककर कहा—उनसे जाकर कह दो, मैं उनसे जरा मिलना चाहता हूँ।

२ सखी—उसके बाद हम चली आईं।

१ सखी—तो फिर अब देर क्यों है। हम मंगलाचरण शुरू करें।

२ सखी—अच्छी बात है।

दोनों गाती हैं—

(नाच और गाना)

ठुमरी—एकताला। रागिनी टोडी

आयो ऋतुराज सजनि, उजियारी रुचिर रजनि।
कुंजन कल-तान मधुर, मुरली कहुँ बाजी॥
डोलत मृदु मंद पवन, सिहरि उठत कुंज-भवन,
कुहु-कुहु-कुहु-ललित-तान, मुखरित वनराजी॥

अम्बा—वे शायद आ रहे हैं।

१ सखी—वे ही हैं।

अम्बा—कहाँ ? ना, वे नहीं है।

२ सखी—कहाँ ? कोई नहीं है।

अम्बा—फिर यह किसके पैरोंका शब्द था ?

सखी—पैरोंका शब्द कहाँ है ?

अम्बा—सूखे पत्तोंकी खड़खड़ाहट तो सुन पड़ी थी।

२ सखी—सच तो यह है सखी, कि हमने कोई आहट नही सुनी।

अम्बा—मेरा तो हृदय धड़कने लगा था।

१ सखी—सम्भव है।

२ सखी—संगत है।

१ सखी—सखी देखो, जरा ऑख उठाकर देखो, पूर्व आकाशमे शरद ऋतुका पूर्ण चन्द्रमा हॅस रहा है।

२ सखी—आज क्या पूनो है?

१ सखी—आज शरद्-पूनो है।

२ सखी—ठडी हवा चल रही है।

१ अम्बा—तो भी मेरी नस-नसमे गर्म खून लहरा रहा हैं।—और सब सखियॉ कहॉ है?

१ सखी—उनकी जरूरत क्या है?

२ सखी—तुम समझी नहीं। उनका मतलब था कि तुम भी बाकी सखियोंके पास चली जाओ।—चलो बहन, चले।

अम्बा—नहीं नहीं, सखियो!

२ सखी—नहीं कैसे?—चलो जी चलो। (दोनो सखियोंका प्रस्थान)

अम्बा—पिंडलियॉ क्यो कॉप रही है? मै ऐसी बच्ची तो हूॅ नहीं—फिर आज भय और सन्देहसे छाती क्यो धड़क रही है?

[अलक्षित भावसे भीष्मका प्रवेश]

भीष्म—लो वह तो यही है।—दमभर इस सुवर्णकी प्रतिमाको देख तो लूँ, फिर इसे विस्मृतिके जलमें विसर्जन कर दूँगा। यह कैसी अपूर्व गरिमा है! नील निर्मल आकाशमे जैसे उज्ज्वल ऊषा हो;

या जैसे दूरस्थित सागरकी लहरोका कल-संगीत हो। इसे विसर्जन करना होगा !—स्वर्गके देवगण ! इस हृदयमे बल दो। संदेह और दुविधासे कॉपते हुए व्याकुल चित्तको इस समय शान्त करो। देवगण! मुझे इस अग्नि-परीक्षाके भीतरमे साफ बचाकर निकाल ले चलो। अहंकारको चूर कर दो, प्रलोभनको पीस डालो, और सारी प्रतिकूल प्रवृत्तियोका गला घोट दो—(अम्बाके पास जाकर धीमे स्वरसे) देवि, आज मै तुम्हारे निकट आया हूँ।

अम्बा—आओ देवव्रत, अबतक इस जगह मै तुम्हारी ही याद कर रही थी—तुम्हारे ही आनेकी राह देख रही थी। आओ प्रियतम!

भीष्म—देवि, आज तुम्हारा भिक्षुक तुम्हारे पास आया है—

अम्बा—काहेके भिक्षुक हो तुम देव ? मै तुम्हे कौनसी भिक्षा दूँगी ? अब मेरे पास और क्या है ? जो कुछ था, सो सब तुम्हारे चरणोमे अर्पण कर चुकी हूँ—अब कुछ नही है।

भीष्म—ठहरो—

अम्बा—सब अर्पण कर चुकी हूँ। उस दिनसे और सब भूल गई हूँ—केवल तुम्हारी याद रहती है।

भीष्म—मगर, अब वह सब भूल जाओ।

अम्बा—प्राणेश्वर, जिस घड़ी तुमको देखा सब भूल गई!

भीष्म—नहीं—नहीं, देवि, तुम यह क्या कह रही हो ?

अम्बा—क्यो देवव्रत ?

भीष्म—देवि, प्रेमकी सब पिछली बातोंको भूल जाओ। और—और—देवि, मुझे क्षमा करो—

अम्बा—यह कैसी पहेली है !

भीष्म——देवि, आज उस प्रेम-संन्यासी देवव्रतको भूल जाओ, जो एक दिन तुम्हारे चरणोके आगे झुककर उदग्रीव, आतुर, सशङ्क, कम्पित-वक्ष और विशुष्क-अधर हो रहा था। उस देवव्रतको भूल जाओ, जो एक दिन रूपके मन्दिरमे तुम्हारा उपासक था——भूखा प्यासा तपा हुआ तुम्हारा प्रेमी था, काले राहुके समान, ज्वालामय अग्निके समान, अन्धी ऑधीके समान स्वार्थ ही जिसका धर्म था। देवि, उस देवव्रतको आज भूल जाओ। उसके बदले आज ऑख उठाकर इस नवीन सन्यासी देवव्रतको देखो——जिसका धर्म स्वार्थ-त्याग है; जिसका काम जन्मभर तक निरन्तर साधना करना है, जिसका व्रत केवल संन्यास है; जिसका प्रेम वासनासे उमडा हुआ नही है, कामसे उग्र नहीं है, स्वार्थसे अन्धा नही है, 'काम' के स्पर्शसे अपवित्र नही है, और सुखकी लालसासे तीव्र नहीं है। उसका यह प्रेम उन्मुक्त उदार है, आकाशकी तरह व्याप्त है, समुद्रकी तरह स्वच्छ है, पृथ्वीकी तरह सहनशील है, प्रात:कालके सूर्यकी तरह प्रकाशमान है, माताके स्नेहकी तरह शान्त और किसीकी अपेक्षा न रखनेवाला है, निर्मल है, उसमे कोई रुकावट नही है। उसी देवव्रतको देखो, तुम्हारे चरणोमे——वह प्रेमका भिक्षुक नही, कृपाका भिक्षुक है।

अम्बा——कुछ समझमे नहीं आता! मै जाग रही हूँ? या सपना देख रही हूँ? क्या कह रहे हो, कुछ नही समझ पाती। क्या तुम मुझे स्वयवरमे ब्याहनेके लिए नहीं आये राजकुमार?

भीष्म——ठीक समझा तुमने।

अम्बा——तो फिर तुम यहाँ क्या करने आये हो?

भीष्म——इस जन्मभरके लिए तुमसे विदा होने आया हूँ बहन!

अम्बा——विदा होने?

भीष्म—हाँ–जन्मभरके लिए ! अब मै फिर इस आनन्दसे उज्ज्वल, मनोहर, मन्द मुसकानसे सुशोभित और प्रेममय मुखचन्द्रको नहीं देखूँगा—इस आवेशपूर्ण, नम्र, सरल, विह्वल, और नाचती हुई वर्षाकी धाराके समान सुमधुर प्रेममयी वाणीको नही सुनूँगा ।

अम्बा—क्यो देवव्रत ? आज ऐसे दारुण वचन क्यो कह रहे हो ? क्या हुआ देवव्रत ?

भीष्म—प्रातःकालकी सुनहली किरणोसे रञ्जित एक मेघ-महल आकाशमे लीन हो गया है; एक झङ्कार उठनेसे पहले ही थम गई है, तुम्हारे चरणोके नीचे एक सोनेका स्वप्न टूटा हुआ पडा है ।

अम्बा—क्यो ? क्यो देवव्रत ?

भीष्म—तुम्हारे और मेरे बीचमे एक अग्निका समुद्र गरज रहा है—

अम्बा—क्यों ? बोलो ! बोलो !

भीष्म—मेरी वहन, मैंने सदाके लिए ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया है।

अम्बा—किस लिए ?

भीष्म—अपने पिताकी प्रसन्नताके लिए मैंने प्रतिज्ञा कर ली है । अब इस जन्ममे व्याह करनेका मुझे अधिकार नही रहा—

अम्बा—निष्ठुर ! निष्ठुर ! जो सच बात है वही क्यो नही कहते ? क्यो नही कहते कि अब मैं तुझे प्यार नही करता !

भीष्म—प्यार करता हूँ । बहुत ही प्यार करता हूँ । अपने प्राणोंसे भी बढकर प्यार करता हूँ, लेकिन कर्त्तव्यसे बढ़कर नही । बस बहन, अब मुझे बिदा करो ।

अम्बा—देवव्रत ! (रोने लगती है ।)

भीष्म—देवि, अपने नेत्रोंके नीरमें मेरे कर्त्तव्यको न बहा देना । इन ऑसुओंसे मेरी जीवनभरकी शान्तिको बहा दो—बीते हुए समयके

सुखकी स्मृतिको बहा दो—इस लोक और परलोकको बहा दो, सब कुछ बहा दो; केवल मेरी प्रतिज्ञाको मत बहाना ।—इन आँसुओंके उच्छ्वास-पूर्ण सागरमे और सब नष्टभ्रष्ट होकर डूब जाय—बह जाय, केवल मेरा कर्त्तव्य पहाड़की तरह गर्वके साथ ऊँचा सिर किये खड़ा रहे ।—तो मेरी प्राणोंसे प्यारी बहन, अब मुझे जानेकी आज्ञा दो ।

अम्बा—ना ना—जाना नही !

भीष्म—देवव्रत ! अपनेको सँभाल ! हृदय दृढ़ कर !—बहन—जाता हूँ ।

अम्बा—प्रियतम, जाना नही !

भीष्म—आँखोपर घने गहरे अन्धकारका परदा-सा पड़ता जा रहा है ।—कुछ भी नहीं देख पडता ।—हे कर्त्तव्य ! मुझे राह दिखा । इस आँधीमे तेरा प्रकाश न बुझने पावे ।—भाग भाग देवव्रत । देवि, तो बस अब यही अंतिम भेट है !

अम्बा—जाना नहीं ! जाना नही !

भीष्म—तो फिर बहन, बिदा होता हूँ ।

अम्बा—मै तुमसे प्रार्थना करती हूँ—जाओ मत ।

भीष्म—नही बहन, जाने दो ।—जाता हूँ ।

अम्बा—मै तुम्हारे पैरो पडती हूँ ।

भीष्म—मेरा कहा मानो । जाता हूँ ।

अम्बा—मेरे देव !　　(आगे बढती है)

भीष्म—नही ।—जाता हूँ ।　　(प्रस्थान)

(अम्बा मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ती है)

दूसरा अङ्क



पहला दृश्य

स्थान—शान्तनुका शयन-गृह

समय—रात

[राजा शान्तनु बैठे हैं। एक ओरसे चित्रागद और विचित्रवीर्यका प्रवेश।]

दोनो—पिताजी! पिताजी!—आज—

शान्तनु—जाओ, दिक न करो।

(दोनोका प्रस्थान)

शान्तनु—ये कौन है।—ये क्या मेरी सन्तान है?—यह क्या? ससार-भरपर जैसे एक कुहासा-सा छाया जा रहा है।

[माधवका प्रवेश]

शान्तनु—आओ मित्र माधव, तुमने सच कहा था।—बहुत ही सच बात कही थी।

माधव—कौनसी बात महाराज?

शान्तनु—कहूँगा नही। बताऊँगा नहीं। यदि बतला दूँगा, तो तुम बहुत ही विज्ञ भावसे सयाने बनकर कहोगे—'मैंने तो कहा था।' उपदेश तीखा होता है, लेकिन यह 'मैंने तो कहा था,' बहुत ही तीखा लगेगा। मित्र, मेरे सब अपराधोंको क्षमा करो। आओ, मैं तुमको गलेसे लगा लूँ। (गलेमे लगाते हैं)

माधव—मेरी समझमें कुछ नहीं आता।

शान्तनु—उसकी जरूरत भी नहीं है।

माधव—महाराज, आज सुस्थ है ?

शान्तनु—सुस्थ ?—खूब अच्छी तरह।

माधव—देखूँ—(नाडी देखकर) यह क्या महाराज !

शान्तनु—क्यो, क्या देखा ?

माधव—आपको तो ज्वर हो रहा है। वैद्यको बुलाऊँ ?

शान्तनु—तीन लोकमे ऐसा वैद्य नही है, जो इस रोगकी दवा कर सके। ज्वर, वायु, विसूचिका, भयंकर यक्ष्मा, आदि बहुतसे रोग है, जो मृत्युकी सेनाके समान मनुष्यके स्वास्थ्यरूपी किलेको घेरे रहते है। लेकिन इनके सिवा और भी बहुतसी व्याधियाँ मनुष्यके शरीरमे रहती है, जिनका नाम आयुर्वेदमे नही है, जो धीरे धीरे जीवनकी नीवको गुप्त रूपसे खोदती रहती है, जो मनुष्यके मस्तकमे लम्बी रेखाये डाल देती है, आँखोके तले गहरी स्याही जमा देती है। इन सब बातोको जाने दो।—सुनो, तुम मेरे केवल मित्र ही नही हो—

माधव—मै विदूषक भी हूँ।

शान्तनु—तो जितना हो सके व्यंग करो, कुवचन कहो; सिर झुकाकर सब सह लूँगा। माधव अव मै एक विनय करता हूँ। मेरे मरनेके बाद इन दोनो बालकोकी देख-रेख तुम रखना—ना, कुछ कहो नही ! और सुनो—देवव्रतको मेरे पास भेज दो। कुछ नही मित्र, कुछ न कहो ! फिर किसी दिन, जो कहना हो, कहना। इस समय मेरी अवस्था कोई बात सुनने योग्य नही है।—जाओ मित्र। (माधवका प्रस्थान)

शान्तनु—अपने पुत्रको संन्यासी बनाकर पिताका विषय-भोग—यह कैसी बुरी बात है—ऐसा अत्याचार, स्वेच्छाचार, क्या प्रकृति सह सकती है ? यह विशृंखला–यह नियमका व्यतिक्रम–मिट गया। प्रकृतिने अपने दुर्गको फिर पा लिया।

[शाल्वका प्रवेश]

शान्तनु—सौभनरेश है ?

शाल्व—महाराज !—

शान्तनु—कुछ कहो मत।—और—और—सौभनरेश, सुस्थ हो?

शाल्व—मै ?—सुस्थ हूँ।

शान्तनु—प्रसन्न हो सौभराज ?

शाल्व—प्रसन्न हूँ।

शान्तनु—यथोचित रूपसे तुम्हारा अतिथि-सत्कार हुआ ?

शाल्व—खूब अच्छी तरह।

शान्तनु—उसका बदला खूब तुमने दिया सौभराज, उसके बद-लेमे मै तुमसे एक भिक्षा चाहता हूँ।

शाल्व—क्या शान्तनु ?

शान्तनु—मेरे सामनेसे दूर हो जाओ। अब न आना। जाओ, जाओ शाल्व! (शाल्वका प्रस्थान)

शान्तनु—दुःख नहीं हुआ, ठीक हुआ। भोग-लालसाका ठीक दण्ड पाया। सन्तानको सुखसे वंचित करके—ना ना कोई दुःख नही है।—ईश्वर! तुम हो। तुम्हारा नियम बहुत ही सच्चा है। पिताका कर्त्तव्य है कि वह पुत्रके कल्याणकी कामनामें अपने सुखका खयाल न करे। मगर मैने सन्तानका सुख—(रुँधी हुई आवाजमें)—ना ना कोई दुःख नही है।

[भीष्मका प्रवेश और प्रणाम करना]

शान्तनु—आ गये देवव्रत ?

भीष्म—आ गया पिताजी। तबीयत कैसी है ?

शान्तनु—अच्छी है देवव्रत । पुत्र, तुमसे मै एक भिक्षा चाहता हूँ । क्या वह भिक्षा मुझे दोगे देवव्रत ?

भीष्म—यह आप क्या कह रहे है ! पिताकी आज्ञासे मैं अपने प्राण तक दे सकता हूँ—

शान्तनु—प्यारे पुत्र, मै यह जानता हूँ। अच्छा तो सुनो—प्राणाधिक पुत्र, मरनेसे पहले मै तुमसे एक अनुरोध किये जाता हूँ कि तुम ब्याह करना और अवश्य । मेरा यही एकमात्र अनुरोध है । इस लोकको तो तुमने मेरे लिए नष्ट कर दिया है, मगर परलोकको मत बिगाडना ।—ना ना देवव्रत, मै इस बातका प्रतिवाद बिल्कुल नही सुनना चाहता—ब्याह अवश्य करना ।—और—क्या कहूँ बेटा, मरनेके बाद मुझे क्षमा करना !

भीष्म—यह आप क्या कह रहे है पिताजी !

शान्तनु—ना ना, कुछ भी प्रतिवाद न करो । टुकडे टुकडे हो जायगा—हृदय टुकडे टुकडे हो जायगा ! जाओ देवव्रत, जाओ प्राणाधिक—और एक बात है—बेटा—जहॉतक हो सके दयाके भावसे मेरे अपराधका विचार करना ।—जाओ । मै सोऊँगा । दरवाजा बद कर लो ।　　(कातर शब्द करके लेट जाते हैं ।)

दूसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुरके एक छोटे घरका आँगन

समय—प्रातःकाल

[धीवर-राज और उसका मन्त्री]

धीवर०—दामादके घर आया, लेकिन यहॉ कोई कुछ खोज-खबर ही नही लेता !—भला लेता है मन्त्री ?

मन्त्री—कहाँ लेता है !

धीवर०—और फिर मै एक राजा हूँ।

मन्त्री—लेकिन इस बातको इस राज-भवनका कोई आदमी मानता ही नहीं।

धीवर०—मानना ही होगा। इसके सिवा मेरा नाती ही तो बादको इस राज्यका राजा होगा। होगा न मन्त्री ?

मन्त्री—सो तो होगा ही।

धीवर०—लेकिन इस बातका कोई कुछ खयाल ही नहीं करता

मन्त्री—कहाँ खयाल करता है !

धीवर०—इस बातको जैसे लोग उड़ा ही देना चाहते है।

मन्त्री—यही तो देख पड़ता है।

धीवर०—लेकिन यह हो नही सकता। मै इसका दावा करूँगा

मन्त्री—जब वे लोग माने तब तो !

धीवर०—मानेगे नहीं ! मै महाराजका ससुर हूँ। यह बा नहीं मानेगे ?

मन्त्री—कहाँ मानते है !

धीवर०—नहीं मानते ?

मन्त्री—जी बिल्कुल नहीं।

धीवर०—क्यो ? यह तो बहुत ही सीधी बात है। महाराज मेरी लडकीसे व्याह किया है—इस नातेसे आदमी ससुर नहीं हो तो क्या होता है ? यह तो सीधीसी बात है।

मन्त्री—बहुत ही सीधी बात है।

धीवर०—लेकिन यह समझनेमे इन लोगोको इतना समय लग रहा है

मन्त्री—बहुत अधिक समय लग रहा है महाराज।

धीवर०—हूँ (मूछोंपर ताव देता है) लेकिन, कैसा ठाठ किया है मन्त्री !—चेहरेको विलकुल भले आदमियोके चेहरेसे मिला दिया है—क्यो न ?

[नौकरके साथ विचित्रवीर्यका प्रवेश]

धीवर०—यह लो । यह मेरा नाती है । आओ भैया ।

विचित्र०—(नौकरसे) यह कौन है ?

नौकर—यह एक गॅवार जंगली है ।

धीवर०—(क्रोधसे) क्या कहा ?—जंगली ?

नौकर—चलो राजकुमार ! (नौकरसहित विचित्रवीर्यका प्रस्थान)

धीवर०—(आश्चर्यसे) ऐ ! पहचान लिया मन्त्री, ठीक पहचान लिया । इतना ठाठ किया, पर सब वृथा हुआ !

मन्त्री—राजासाहब खैरियत नही जान पडती ।

धीवर०—क्या, नही जान पड़ती ।

मन्त्री—खिसक चलिए राजासाहब, पहलेहीसे खिसक चलिए ।

धीवर०—ऐ ! ऐ ! खिसक चलूॅ ! खिसक क्यो चलूॅ ?

मन्त्री—नही तो गर्दना देकर निकाल देगे ।

धीवर०—ऐ ! ऐ ! गर्दना ! गर्दना ! कहते क्या हो !

मन्त्री—जो स्त्रीके भयसे बिना बुलाये दामादके घर भाग आता है, उसकी खातिर दामादके यहाॅ इसी तरह होती है राजासाहब !

धीवर०—उसकी शायद इसी तरह खातिर होती है ।

मन्त्री—मै तो बराबर यही देखता हूॅ !

धीवर०—यही देखते आ रहे हो ?

मन्त्री—ढॅग कुछ अच्छे नही देख पड़ते । राजासाहब, खिसक चलिए ।

धीवर०—मै नही जाऊँगा । मै राजाका ससुर हूँ । मुझे जगह देनेके लिए वे लोग बाध्य है ।

मन्त्री—जगह तो उन्होने दी है—इस अस्तबलमे !

धीवर०—क्या अस्तबलमे ! क्या कहा मन्त्री ? यह अस्तबल है ?

मन्त्री—जी हॉ अस्तबल है ।

धीवर०—अस्तबल है ?

मन्त्री—कह तो रहा हूँ, अस्तबल है ।

धीवर०—मन्त्री, तुमने सुननेमे गल्ती की है। मै राजा हूँ। मै राजाका ससुर हूँ । मेरे रहनेके लिए—

मन्त्री—अस्तबल है ।

(नौकरोंके साथ चित्रागदका प्रवेश)

धीवर०—यही तो मेरा बड़ा नाती है ?

नौकर—तुम्हारा नाती ?

मन्त्री—कहते है, यही तो महाराज शान्तनुके बड़े कुँअर है ?

नौकर—हॉ, तो इससे क्या ?

धीवर०—तो बस फिर, यह मेरा नाती हुआ ।

नौकर—तुम्हारा नाती ?—हाः हाः हाः हाः हाः हाः !

धीवर०—हँसते क्यो हो ?—मन्त्री !

मन्त्री—जी राजासाहब, सो तो कुछ मेरी समझमे भी नहीं आता। तुम लोगोंका राजा कौन है ?

धीवर०—हॉ, राजा कौन है ?

नौकर०—महाराज शान्तनु ।

धीवर०—मैं उन्हीका ससुर हूँ । (नौकर फिर ज़ोरसे हँसता है ।)

चित्रागद—(नौकरसे) कौन है यह ?

नौकर—एक पागल है।

चित्रागद—राजभवनमे पागलकी क्या जरूरत है? निकाल दो?

धीवर०—क्या निकाल दोगे? कैसे!

चित्रागद—(नौकरोंसे) निकाल दो। (कई नौकरोंके साथ प्रस्थान)

धीवर०—कैसे!—मन्त्री!

नौकर—निकल जाओ।

धीवर०—निकल क्यो जाऊँ?—मैं महाराजका ससुर हूँ। राजा कहाँ है?

नौकर—निकल जाओ। नही तो गर्दना देकर बाहर कर देगे।

धीवर०—क्या?—मै राजाका ससुर हूँ, मुझे गर्दना। (कमानपर तीर चढ़ाकर) लड़ूँगा—लड़ूँगा।

नौकर—आ रे!　　　　(तरवार खीच लेता है।)

धीवर०—ओ बाबा!　　　　(पीछे हटता है।)

नौकर—निकल जाओ! (गर्दनमे हाथ देता है)

धीवर०—अच्छा जाता हूँ।

[माधवका प्रवेश]

माधव—ए! ए! क्या करते हो! क्या करते हो!

नौकर—बाहर निकाले देता हूँ।

माधव—क्यो?

नौकर—राजकुमारका हुक्म है।

माधव—ना ना, करते क्या हो!—ये महाराजके ससुर हैं।

नौकर—ऐ!—मै समझा था, कोई पागल है।

माधव—पागल होनेसे क्या ससुर नहीं होता? आइए महाशय, कुछ खयाल न करिएगा।

मन्त्री—कहाँ लेता है !

धीवर०—और फिर मै एक राजा हूँ।

मन्त्री—लेकिन इस वातको इस राज-भवनका कोई आदमी मानता ही नही।

धीवर०—मानना ही होगा। इसके सिवा मेरा नाती ही तो वादको इस राज्यका राजा होगा। होगा न मन्त्री ?

मन्त्री—सो तो होगा ही।

धीवर०—लेकिन इस वातका कोई कुछ खयाल ही नही करता।

मन्त्री—कहाँ खयाल करता है !

धीवर०—इस वातको जैसे लोग उड़ा ही देना चाहते है।

मन्त्री—यही तो देख पडता है।

धीवर०—लेकिन यह हो नही सकता। मै इसका दावा करूँगा।

मन्त्री—जव वे लोग माने तव तो !

धीवर०—मानेगे नही ? मैं महाराजका ससुर हूँ। यह वात नहीं मानेगे ?

मन्त्री—कहाँ मानते हैं !

धीवर०—नही मानते ?

मन्त्री—जी विल्कुल नही।

धीवर०—क्यो ? यह तो वहुत ही सीधी वात है। महाराजने मेरी लड़कीसे व्याह किया है—इस नातेसे आदमी ससुर नहीं होता तो क्या होता है ? यह तो सीधीसी वात है।

मन्त्री—वहुत ही सीधी वात है।

धीवर०—लेकिन यह समझनेमे इन लोगोंको इतना समय लग रहा है?

मन्त्री—वहुत अधिक समय लग रहा है महाराज।

धीवर०—हूँ (मूछोंपर ताव देता है) लेकिन, कैसा ठाठ किया है मन्त्री !—चेहरेको बिलकुल भले आदमियोंके चेहरेसे मिला दिया है—क्यों न ?

[नौकरके साथ विचित्रवीर्यका प्रवेश]

धीवर०—यह लो । यह मेरा नाती है । आओ भैया ।

विचित्र०—(नौकरसे) यह कौन है ?

नौकर—यह एक गँवार जंगली है ।

धीवर०—(क्रोधसे) क्या कहा ?—जंगली ?

नौकर—चलो राजकुमार ! (नौकरसहित विचित्रवीर्यका प्रस्थान)

धीवर०—(आश्चर्यसे) ऐ ! पहचान लिया मन्त्री, ठीक पहचान लिया । इतना ठाठ किया, पर सब वृथा हुआ !

मन्त्री—राजासाहब खैरियत नहीं जान पडती ।

धीवर०—क्या, नहीं जान पड़ती ।

मन्त्री—खिसक चलिए राजासाहब, पहलेहीसे खिसक चलिए ।

धीवर०—ऐ ! ऐ ! खिसक चलूँ ! खिसक क्यों चलूँ ?

मन्त्री—नहीं तो गर्दना देकर निकाल देंगे ।

धीवर०—ऐ ! ऐ ! गर्दना ! गर्दना ! कहते क्या हो !

मन्त्री—जो स्त्रीके भयसे बिना बुलाये दामादके घर भाग आता है, उसकी खातिर दामादके यहाँ इसी तरह होती है राजासाहब !

धीवर०—उसकी शायद इसी तरह खातिर होती है ।

मन्त्री—मैं तो बराबर यही देखता हूँ !

धीवर०—यही देखते आ रहे हो ?

मन्त्री—ढँग कुछ अच्छे नहीं देख पड़ते । राजासाहब, खिसक चलिए ।

धीवर०—मै नहीं जाऊँगा। मै राजाका ससुर हूँ। मुझे जगह देनेके लिए वे लोग बाध्य है।

मन्त्री—जगह तो उन्होने दी है—इस अस्तवलमे !

धीवर०—क्या अस्तवलमे ! क्या कहा मन्त्री ? यह अस्तवल है ?

मन्त्री—जी हॉ अस्तवल है।

धीवर०—अस्तवल है ?

मन्त्री—कह तो रहा हूँ, अस्तवल है।

धीवर०—मन्त्री, तुमने सुननेमे गल्ती की है। मै राजा हूँ। मैं राजाका ससुर हूँ। मेरे रहनेके लिए—

मन्त्री—अस्तवल है।

(नौकरोके साथ चित्रागदका प्रवेश)

धीवर०—यही तो मेरा वड़ा नाती है ?

नौकर—तुम्हारा नाती ?

मन्त्री—कहते है, यही तो महाराज शान्तनुके वड़े कुँअर है ?

नौकर—हॉ, तो इससे क्या ?

धीवर०—तो वस फिर, यह मेरा नाती हुआ।

नौकर—तुम्हारा नाती ?—हाः हाः हाः हाः हाः हा !

धीवर०—हँसते क्यो हो ?—मन्त्री !

मन्त्री—जी राजासाहव, सो तो कुछ मेरी समझमे भी नहीं आता। तुम लोगोंका राजा कौन है ?

धीवर०—हॉ, राजा कौन है ?

नौकर०—महाराज शान्तनु।

धीवर०—मै उन्हींका ससुर हूँ। (नौकर फिर ज़ोरसे हँसता है।)

चित्रागद—(नौकरसे) कौन है यह ?

नौकर—एक पागल है।

चित्रांगद—राजभवनमे पागलकी क्या जरूरत है ? निकाल दो ?

धीवर०—क्या निकाल दोगे ? कैसे !

चित्रांगद—(नौकरोंसे) निकाल दो। (कई नौकरोके साथ प्रस्थान)

धीवर०—कैसे !—मन्त्री !

नौकर—निकल जाओ।

धीवर०—निकल क्यो जाऊँ ?—मै महाराजका ससुर हूँ। राजा कहॉ है ?

नौकर—निकल जाओ। नही तो गर्दना देकर बाहर कर देगे।

धीवर०—क्या ?—मै राजाका ससुर हूँ, मुझे गर्दना। (कमान-पर तीर चढ़ाकर) लडूँगा—लडूँगा।

नौकर—आ रे! (तरवार खींच लेता है।)

धीवर०—ओ बाबा ! (पीछे हटता है।)

नौकर—निकल जाओ! (गर्दनमे हाथ देता है)

धीवर०—अच्छा जाता हूँ।

[माधवका प्रवेश]

माधव—ए ! ए ! क्या करते हो ! क्या करते हो !

नौकर—बाहर निकाले देता हूँ।

माधव—क्यो ?

नौकर—राजकुमारका हुक्म है।

माधव—ना ना, करते क्या हो !—ये महाराजके ससुर है।

नौकर—ऐ !—मै समझा था, कोई पागल है।

माधव—पागल होनेसे क्या ससुर नही होता ? आइए महाशय, कुछ खयाल न करिएगा।

धीवर०—कुछ खयाल न करूँगा ? खूब खयाल करूँगा। मेरा अपमान ! मै लड़ूँगा। तुम नही जानते, मै राजा हूँ !—मन्त्री !

मन्त्री—राजासाहब टाल जाइए–टाल जाइए।

धीवर०—हाँ ! टाल जाऊँ ? टाल जाऊँ ?

(मन्त्री इशारा करता है।)

धीवर०—अच्छा अबकी क्षमा करता हूँ !—अच्छा, अब बताओ राजा कहाँ है ?

माधव—वे बहुत ही बीमार है। किसीसे मुलाकात करनेकी हालत उनकी नही है।

धीवर०—लेकिन इसीसे क्या मुझे रहनेके लिए घोडेके अस्तबलमें जगह मिलनी चाहिए ?—क्या तुम नही जानते कि मै राजाका ससुर हूँ ?

माधव—भूल हुई ! आपके रहनेके लिए जगह मै ठीक किये देता हूँ। आइए।

धीवर०—कहाँ ?

माधव—पागलखानेमे।

धीवर०—पागलखाना कैसा !

माधव—देखिए, आप और राजाका नया शिकारका घोडा एक साथ ही राजमहलके द्वारपर आये थे। मैने हुक्म दिया कि आपको पागलखानेमे और घोडेको अस्तबलमे रक्खा जाय। परन्तु आदमियोंने भूलसे आपको अस्तबलमे और घोड़ेको पागलखानेमे पहुँचा दिया।—सिपाही, इन्हे पागलखानेमे पहुँचा आओ !

धीवर०—क्या मुझे ?

माधव—(सिपाहीसे) ले जाओ। (प्रस्थान)

मन्त्री—चलिए राजासाहब, कुछ कहिएगा नही।

धीवर०—क्यो ?

मन्त्री—ढग अच्छे नही देख पड़ते ।—

धीवर०—अच्छे नही देख पड़ते ?

[धीवरराजकी रानीका प्रवेश]

धी० रानी—यह लो, यहाँ आ गया !

धीवर०—ओ बाबा ! (कॉपता है)

धी० रानी—यहाँ भाग आया है कलमुँहे ? जो सोचा था वही हुआ ! चल, घर चल ।

धीवर०—मै नही जाऊँगा । क्यो जाऊँ !—मन्त्री !

मन्त्री—राजासाहब, घर लौट चलिए । कुछ न कहिए । यहॉकी खातिरदारीका ढॅग तो आपने देख ही लिया है ।

धीवर०—चाहे जो हो, मै घर न जाऊँगा ।

धी० रानी—नहीं जायगा ? (कान पकडती है ।)

धीवर०—ना ना, चलो—चलता हूँ ।

धी० रानी—चल । (सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुरके अन्तःपुरका एक हिस्सा

समय—रात

[चिन्तित भावसे भीष्म टहल रहे हैं ।]

भीष्म—इधर कई दिनसे पृथ्वी और आकाशपर अनेक अमगल-के चिह्न देख पड़ रहे है । ये अवश्य ही किसी होनेवाले अकल्याणकी सूचना दे रहे है । आग्नेय कोणमे नित्य धूमकेतु देख पड़ता है, दिन-दोपहरको सियारोकी आवाज सुन पड़ती है, गृहचूड़ाओपर कौए कर्कश

कॉ कॉ शब्द करते है। कई दिनोसे महाराजकी बुरी हालत है। वे कातर भावसे रोगशय्यापर पड़े हुए है। मालूम नहीं क्या होगा।— जगदीश, पिताको बचाओ, बदलेमे मेरे प्राण ले लो। (प्रस्थान)

[चित्रागद और विचित्रवीर्यका प्रवेश]

चित्रा०—कहाँ है दादा ?

विचित्र०—यही तो थे।

चित्रां०—तो जान पडता है, वे पिताजीके पास होगे। वे तो आठो पहर पिताके सिरहाने बैठे रहते है।

विचित्र०—कभी कभी बस यही चले आते हैं।

चित्रा०—इधर कई दिनसे वे बहुत चिन्तित देख पड़ते हैं।

विचित्र०—आजकल तो हम लोगोसे भी वैसे प्यारकी बाते नहीं करते।

चित्रां०—उन्हे फुरसत कहाँ है !

विचित्र०—तुम दादाको प्यार करते हो ?

चित्रां०—करता हूँ।

विचित्र०—खूब ?

चित्रां०—खूब।

विचित्र०—मेरी तरह ?

चित्रा०—तुमसे भी बढ़कर।

विचित्र०—हिश ! यह हो ही नहीं सकता।

चित्रा०—चलो देखे, वे कहाँ गये। (प्रस्थान)

[चिन्तित भावसे सत्यवतीका प्रवेश]

सत्यवती—बड़ा अच्छा वर है ऋषिवर ! यह अनन्त जवानी बुढापेकी गोशालामे मरण तक बँधी रहेगी। अथवा महर्षि, तुम ही क्या करो

विलासकी लालसामे मूढ़ हो कर, मैने ही यह वर छाँटकर माँगा था। मै समझी थी ‘ अनन्त जवानी ’ के माने ‘ अनन्त-संभोग ’ है। परन्तु यह वर—मृगतृष्णाके समान संभोगकी वासनाको उत्तेजित करता है, लेकिन कभी उसे तृप्त नहीं करता, यह होनीकी तरह मेरे मत्थेमे लिख गया है और इसने मुझे दासी बना लिया है। यह रोगके कीटाणुओके समान मेरे खूनमे मिलकर नस-नसमे व्याप गया है। तुमने यह क्या किया ऋषिवर ! अपना वर फेर लो, या मुझे स्वतन्त्र स्वाधीन कर दो।

[माधवका प्रवेश]

माधव—वही हो रानी। इस घड़ीसे अब तुम स्वतन्त्र, स्वाधीन हो। अनन्त जवानीको बिना रोक-टोकके भोगो। महाराजका स्वर्गवास हो गया।

सत्य०—यह क्या ! महाराजका स्वर्गवास हो गया ?

माधव—हॉ, अब अनन्त जवानीका भोग करो।—सब आफत मिट गई—सोच क्या रही हो, पतिकी हत्या करनेवाली ?

सत्य०—मै ?

माधव—हॉ तुम।

सत्य०—मैने पतिकी हत्या की है ?

माधव—अपने हाथसे किसीके पेटमे छुरी भोक देनेको, या किसी भोले भाले मनुष्यको विषमिश्रित मदिरा पिला देनेको ही हत्या नहा कहते। ममताहीन व्यवहार मर्मस्थलपर छुरीसे भी बढ़कर चोट पहुँचाता है—सर्पसे भी बढ़कर भयानक कृतघ्नता आकर चुपचाप

डस लेती है । अपने हेय स्वेच्छाचार और अनाचारसे तूने पतिकी हत्या की है पापिनी !

सत्य०—क्या अनाप-शनाप बक रहे हो वृद्ध विदूषक ! तुम वृद्ध हो, इस लिए मै हस्तिनापुरकी रानी तुम्हे क्षमा करती हूँ ।—जाओ।

माधव—पिशाची कुटला (प्रस्थान)

सत्य०—इतनी मजाल !—वृद्ध विदूपक तुम्हारे इस अहंकारको चूर कर दूँगी—इस अकड़को मिटा दूँगी ।—' पिशाची कुलटा ! ' और अगर यही सच हो, तो इसमे आक्षेप काहेका है ! इसमे मेरा क्या दोष है ?—अगर स्वार्थान्ध पुरुष माथेपर झुर्रियाँ पड़नेपर भी, गलेका मास लटक आनेपर भी, दाँत गिर जानेपर भी, जीर्ण-शीर्ण अपाहिज हो जाने पर भी, इन्द्रियोके शिथिल पड जानेपर भी, विलास करना चाहते है; तो वह क्या मेरा दोष है ?—होगा ! महाराजकी मृत्यु हो गई है ।—अब मै पराधीन नही हूँ । आज मै जो चाहे कर सकती हूँ—स्वेच्छाधीन हूँ—ओहो कैसा उल्लास है ! हाँ, बदला लूँगी—मनचाही करूँगी; संकोच काहेका है ? मेरा धर्म है ही कहाँ ? मै धीवरकी कन्या हूँ—मैं अनन्त-यौवना हूँ ।

[अलक्षित भावसे शाल्वका प्रवेश]

शाल्व—रानी !

सत्य—(चौंककर) सौभराज ?

शाल्व—महाराजकी मृत्यु हो गई ।

सत्य०—सुन चुकी हूँ !

शाल्व—आजसे—

सत्य०—क्या कहते हो ?

शाल्व—आजसे महारानी स्वतन्त्र—स्वाधीन है !

सत्य०—सो जानती हूँ राजासाहब।

शाल्व०—तो फिर—(आगे बढता है)

सत्य०—ठहरो लंपट, याद रखना, मै हस्तिनापुरकी महारानी हूँ!

शाल्व—हस्तिनापुरकी महारानी! अब इस चकमेकी क्या जरूरत है! मै हस्तिनापुरके शीश महलमे, एक महीनेसे अधिक हुआ, अतिथिरूपसे ठहरा हुआ हूँ। तुम जानती हो, मै तुम्हारे रूपके द्वारका भिक्षुक हूँ।—और आज तुम बन्धन-मुक्त हो!

सत्यवती—सोचनेके लिए समय दो।

शाल्व—सोचनेका समय बीत चुका। अब यह संकोच क्यो आओ— (आगे बढकर हाथ पकड़ता है।)

[भीष्मका प्रवेश]

भीष्म—ठहर अधम नारी।—ओ. कैसा घृणित है। कैसा भयानक है! कैसा वीभत्स है! यह भी विश्व है?—दयामय! यह भी क्या तुम्हारी सृष्टि है? जिनकी सृष्टि यह शान्तिमयी चन्द्रमाकी चॉदनी है, यह हरी-भरी फूली-फली पृथ्वी है, यह नक्षत्रोसे अलंकृत नील आकाश है, यह स्वच्छ लहरोवाली नदी है, यह पक्षियोका मधुर संगीत है, यह सुगन्ध है, यह मन्द पवन है, उन्हीकी सृष्टि यह भी है!—और स्नेहमयी रमणी! अन्तको क्या यह भी तुमसे संभव है?—पापिनी, अभी पिताकी लाश पडी हुई है—उसका दाह-संस्कार तक नही हुआ! अभी पिताकी अन्तिम गर्म सॉसोसे महलकी वायु भी गर्म बनी हुई है। अभी तक पिताका आत्मा तुझे घेरे हुए है। नारी, सावधान। पिताकी स्मृतिके अक्षय पवित्र तीर्थको गन्दा न करना—(शाल्वसे) और महाराज, आज इस कालिमा-राशिको तुम्हारे रुधिरसे धोऊँगा। लंपट, तरवार निकाल। (अपनी तरवार निकाल लेते हैं)

सत्य०—देवव्रत !

भीष्म—चुप पापिनी, आज मै अन्धा हो रहा हूँ। क्या कर रहा हूँ, कुछ नहीं जानता। (शाल्वसे) तरवार निकाल, या दूर हो जा अभी इस महलसे बदमाश!

सत्य०—देवव्रत, सुनूँ तो, तुम आज्ञा करनेवाले कौन हो?

भीष्म—मै भीष्म हूँ।

सत्य०—देवव्रत, इसी दम यह महल छोड़कर चले जाओ। मैं हस्तिनापुरकी महारानी आज्ञा देती हूँ।

भीष्म—चला जाऊँगा। लेकिन उससे पहले इस राहके कुत्तेको दूर कर जाऊँगा।—(शाल्वसे) तरवार निकाल।

शाल्व—मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

भीष्म—जाओ। अगर फिर कभी हस्तिनापुरमे पैर रक्खा, तो शाल्वका धड़ ही घरको लौटकर जायगा, निश्चय जानना।—जय हो महारानी!—मै जाता हूँ। (प्रस्थान)

(सत्यवती क्रोधसे होंठ चबाती हुई जाती है।)

चौथा दृश्य

स्थान—गन्धर्वराज चित्रागदका प्रमोद-वन

समय—रात

[गन्धर्वराज चित्रागद, उसका मित्र चित्रसेन और सब मुसाहब बैठे हैं। सामने नाचनेवालियाँ खड़ी हैं।]

चित्रसेन—मित्र, सुना है, प्रबल प्रतापी हस्तिनापुरके महाराज शान्तनुका देहान्त हो गया है, जिनकी रानी अपूर्व सुन्दरी और अनन्तयौवना है।

चित्रा०—अनन्त-यौवना ?

चित्र०—तुमने सुना नही मित्रवर ? वह महर्षिके वरसे अनन्त-यौवना है।

चित्रां०—कौन ऋषि चित्रसेन ?

चित्र०—महर्षि पराशर।

चित्रा०—सम्राट् शान्तनु मर गये ? उनके पुत्र है ?

चित्र०—वड़े पुत्र देवव्रत है, जिन्हे लोग भीष्म कहते है। वे जगत्मे अजेय है। उन्हे कोई नहीं जीत सकता।

चित्रा०—भीष्मको जगत्मे कोई नही जीत सकता ?

चित्र०—सुना है मित्र, किन्तु भीष्म इस समय वनवासी है।

चित्रा०—किस लिए ?

चित्र०—मालूम नही।

चित्रा०—तो इस समय हस्तिनापुरका सिहासन शून्य है।

चित्र०—कौन कहता है सिंहासन शून्य है ! उसी अनन्त-यौवना रानीका वड़ा पुत्र आज हस्तिनापुरके राज्यका मालिक है।

चित्रा०—उसका क्या नाम है ?

चित्र०—उसका नाम चित्रागद है।

चित्रा०—क्या नाम वताया ?

चित्र०—चित्रागद।

चित्रा०—चित्रसेन, मेरा नाम भी तो चित्रागद है !

चित्र०—तो इसमे विचित्र क्या है ?

चित्रा०—उसका नाम चित्रागद है ? सच कहते हो मित्र ?

चित्र०—विल्कुल ठीक कहता हूँ। जैसे मेरा नाम चित्रसेन निश्चित है, वैसे ही उसका नाम चित्रांगद निश्चित है।

चित्रा०—उसपर चढ़ाई करो, आक्रमण करो ।—सेनापति !

[सेनापतिका प्रवेश]

चित्रा०—सेनापति, हस्तिनापुरके राजाका नाम भी चित्रागद है, उसे पकड़कर ले आओ ।

चित्र०—किस लिए मित्र ?

चित्रां०—मं देखूँगा कि उसकी कैसी सूरत है ?

चित्र०—क्यो ?

चित्रा०—केवल कौतूहल पूर्ण करनेके लिए ।

चित्र०—तुम क्या पागल हो चित्रांगद ?

चित्रा०—क्या कहा ?

चित्र०—तुम क्या पागल हो ?

चित्रा०—उसके बाद !

चित्र०—उसके बाद क्या !

चित्रां०—तुमने क्या नाम लेकर पुकारा ?

चित्र०—चित्रागद कहकर, जो कि तुम्हारा नाम है ।

चित्रां०—उठो, आओ तुम्हे गलेसे लगा लूँ । (उठता है ।)

चित्र०—(चित्रागदके गले लगाने पर) यह क्यो ?

चित्रा०—तुमने मुझे याद करा दिया कि मेरा नाम चित्रागद है। बन्धुवर सुनो, सारे पृथ्वीमण्डलपर मैं ही अकेला चित्रागद हूँ । और कोई अगर यह नाम धारण करे, तो वह चोरी है । उसके साथ मेरा विरोध है ।—सेनापति !

सेनापति—महाराज !

चित्र०—हस्तिनापुरका राजा मेरा प्रधान शत्रु है । युद्धकी तैयारी कर दो ।

सेना०—जो आज्ञा स्वामी। (प्रस्थान)

चित्र०—चित्रांगद, मित्र, तुम्हारा सिर फिर गया है! जिस किसीका भी नाम चित्रांगद हो, उसे ही तुम्हारा शत्रु समझना होगा?

चित्रा०—अवश्य। वह अपना नाम मिटा दे—फिर मुझसे उससे कोई झगड़ा नहीं है। वह मेरा बन्धु है—परम मित्र है।—इस संसारमें अकेला मैं ही चित्रांगद हूँ। प्रिय मित्र, जाओ, सेना तैयार करो।

(परदा गिरता है)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—व्यासका आश्रम

समय—प्रातःकाल

[व्यास और भीष्म]

व्यास—'सुख-सुख' करता हुआ मनुष्य निरन्तर नित्य मारा मारा फिरता है। वह खाने-पीनेमें, सोनेमें, सवारीमें, मान-सम्मानमें, महामूल्य वस्त्रोंमें और अनेकानेक व्यसनोंमें उसे खोजता फिरता है—तो भी नहीं पाता। मगर वह सुख बहुत सहज, सरल, अनायास ही प्राप्य, अपने ही हाथमें है।

भीष्म—यह कैसे।

व्यास—सुखकी विविध सामग्रियाँ मुझे नसीब नहीं है। लेकिन अपनी आवश्यकताओंको—अभावोंको—मैं आप अपने हाथों कम कर सकता हूँ। आमदनी न बढ़े, खर्चको तो कम कर सकता हूँ। लाभ सुलभ नहीं है, पर हानि तो सहज है। यह देखो, रहनेके लिए मेरी यह साधारण कुटी है, बिछानेके लिए मृगछालाका आसन है, पहननेके लिए वृक्षोंके वल्कल हैं; भोजनके लिए फल-मूल है, पीनेके लिए झर-

नोका पानी है। इस तरह धन-हीन सुख सामग्री-हीन होनेपर भी मुझे काहेकी कमी है! अकिञ्चन ब्राह्मण होनेपर भी मै इस कुशोकी कुटी-रमे सम्राट् हूँ।

भीष्म—महर्षि, तुम सम्राटोंके भी सम्राट् हो। कुशाओंकी कुटीमें बैठे बैठे सारे भारतका शासन कर रहे हो। इसीसे आज मै हस्तिना-पुरका राजकुमार, परशुरामका शिष्य भीष्म, तुम्हारे ज्ञानके द्वारपर कृपाका भिक्षुक हूँ।

व्यास—तुम्हारी ज्ञानकी प्यास नही मिटी देवव्रत?

भीष्म—महोदय, ज्ञानकी प्यास क्या कभी मिटती है?

व्यास—देवव्रत, तुमने विष-पान किया है, औषध करो।

भीष्म—सो कैसे ऋपिवर?

व्यास—ज्ञान-विचार करना क्षत्रियोका धर्म नही है। युद्धका मैदान ही क्षत्रियकी कर्मभूमि है।—जाओ, चिन्तना मत करो—विचार मत करो। काम करो। सोचनेके लिए मै हूँ। जाओ, घर लौट जाओ।

(प्रस्थान)

[माधवका प्रवेश]

भीष्म—ये लो चाचा यही आ गये। चाचा, चाचा!

(माधवकी ओर लपकते हैं।)

माधव—बेटा देवव्रत? (गलेसे लगाता है) अभी जीते हो?

भीष्म—चाचा, मेरी मृत्यु मेरी इच्छाके बिना नही हो सकती। इसीसे मेरा मरण नही हुआ। मेरे भाई चित्रांगद और विचित्रवीर्य तो कुशलसे हैं?

माधव—चित्रागद और विचित्रवीर्य अभीतक बचे हुए है, लेकिन लौटकर उन्हें देख पाऊँगा या नहीं, सन्देह है।

भीष्म—यह क्यों चाचा ?

माधव—गन्धर्वराज चित्रांगदने राज्यपर चढ़ाई की है। आओ देवव्रत, राज्यको लौट चलो।

भीष्म—यह कैसे हो सकता है चाचा ? हस्तिनापुरमें लौटकर जानेका मुझे अधिकार ही क्या है ?—मुझे रानीने देशसे निकाल दिया है !

माधव—महारानी कौन होती है ? महाराज शान्तनुकी मौतके बाद राज्यके राजा तुम हो। आओ देवव्रत, चलो। राजदण्ड लो, सिंहासन-पर अधिकार करो, और द्वितीय रामचन्द्रके समान साम्राज्यका पालन करो।

भीष्म—ना चाचा, मैंने जन्मभरके लिए राज्याधिकार छोड़ दिया है।

[व्यासका प्रवेश]

व्यास—तो भी तुम क्षत्रिय हो। जाओ देवव्रत, राज्यकी रक्षा करो। आर्त्तोंका उद्धार करो। बैरियोंका दल जिस समय स्पर्द्धासे उद्धत होकर देशपर आक्रमण करने आ रहा है, उस समय क्या क्षत्रियको आँखे मूँदकर सोना चाहिए ? जब क्षत्रिय ही अपने धर्मको छोड़ देंगे, तब यह स्वर्णभूमि भारत रसातलको चला जायगा।

भीष्म—जो आज्ञा ऋषिवर, चरणोंमें प्रणाम करता हूँ।

(प्रणाम करना)

व्यास—तपस्वीके आशीर्वादसे तुम्हारे सब विघ्न दूर हों ! जाओ भीष्म !

(माधव और भीष्म कुछ दूर आगे बढते हैं।)

माधव—(आगे सहसा रुककर) यह क्या देवव्रत ! यह क्या !—यह क्या ! सारे आकाशमें घन-घोर मेघोंने फैलकर अन्धकार छा

ढिया है। बिजली चमक रही है। प्रबल आँधी चली आती है। बिजली रह-रहकर कड़कती है।

भीष्म—(दूरपर देखकर) यह क्या! कुछ भी नही सूझता।—ऋषिवर!

व्यास—डर नही है देवव्रत, ब्राह्मणका काम ब्राह्मण करेगा!—मेघ-राशि उड़ जाय। आँधी थम जाय। अन्धकार दूर हो जाय।

(फिर प्रकाश होता है।)

भीष्म—(दूरपर देखकर) एक अलंघ्य पर्वत हस्तिनापुरकी राह रोके खड़ा है।

व्यास—अगर व्यासमे तपस्याका बल हो, तो पर्वत चूर्ण हो जाय।

(पर्वत चूर्ण हो जाता है।)

व्यास—चले जाओ देवव्रत, कोई भय नही है। कोई बाधा नहीं है।

(माधव और भीष्मका प्रस्थान)

[महादेव और पार्वतीका प्रवेश]

महादेव—पार्वती, तपस्याकी शक्ति देखी!—(आगे बढ़कर) सत्व व्यास!

व्यास—कौन हो तुम?

महादेव—शकर।—मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। ऋषिवर, जो चाहो, वर माँगो।

व्यास—यही माँगता हूँ कि तपोबलसे मनुष्य-जातिका हित कर सकूँ। बस, यही प्रार्थना है।

महा०—तथास्तु। तुम्हारी कीर्ति अमर रहे।

(सबका प्रस्थान)

छठा दृश्य

स्थान—काशीराजका प्रमोद-वन

समय—तीसरा प्रहर

[अम्बिका और अम्बालिका]

गीत । ठुमरी, पजाबी ठेका

उजले बादल उड़े जा रहे, संध्या-किरण-प्रभा-छवि-छाये ॥
जगशोभाकी विजयपताका, ज्यों उड़ती बहु रंग दिखाये ॥
हम भी हिल-मिल-चलो उड़ चलें, परस्तानमें मौज मनायें।
मलय-पवनमें देह छोड़कर, नील गगनमें पर फैलायें।
देखो कैसे देख पड़ें नर, देखो कैसी भूमि सुहाये।
जीवन क्या केवल चिन्ता है ? केवल नीरस काम चलाये ॥
क्या होगा यह सोच साचकर, कर ले जीवन-भोग भला ये।
नहि तो जग है केवल मिट्टी, जीवन बच रहना कहलाये ॥

अम्बिका—अच्छा गाना है !

अम्बालिका—बड़ा सुन्दर है !

अम्बि०—हम आप ही गीत बनाकर, आप ही गाकर—

अम्बालि०—आप ही मगन हैं !

अम्बि०—ऐसा बहुत कम देख पडता है; (गानेके स्वरसे) " उजले बादल उड़े जा रहे। "

अम्बालि०—(वैसे ही स्वरसे) " संध्या-किरण-प्रभा छवि-छाये। "

अम्बि०—मुझे कविताके भाव खूब सूझ पडते हैं।

अम्बालि०—और ' तुक ' तो मेरी जीभपर ही रक्खी रहती है। यहाँ ' छवि-छाये ' की तुकका मिलना और साथ ही भावको बनाये रखना बहुत ही कठिन हो उठा था।

अम्बि०—हम दोनो बहनोकी जोडी बहुत अच्छी मिली है।

अम्बालि०—दो रत्न है !

अम्बि०—लेकिन बडी दीदीका ढंग और ही है ! न गीत ही गा सकती है—

अम्बालि०—और न कविताकी तुक ही मिला सकती है।

अम्बि०—सदा उदास रहती है।

अम्बालि०—अभीतक ब्याह नही हुआ है न। इसीसे !

अम्बि०—अच्छा दीदीने अभीतक ब्याह क्यो नहीं किया ?

अम्बालि०—ठीक यही मै भी सोच रही थी।

अम्बि०—बहन, तू ब्याह करेगी ?

अम्बालि०—करूँगी क्यो नहीं !

अम्बि०—जानती है, तेरा वर कैसा होगा !

अम्बालि०—तुम्ही बताओ, कैसा होगा ?

अम्बि०—जानती नही, वर कैसा होगा ?—ठहर, जरा ऑखे मूँदकर तेरे वरका ध्यान कर लूँ। (बैठकर ऑंखे मूँदती है।)

अम्बालि०—मै भी ध्यान करती हूँ। (वैसे ही बैठकर ऑखे मूँदती है।)

अम्बि०—मै तेरे वरको देख रही हूँ।

अम्बालि०—देख रही है ? अच्छा, कैसा है ?

अम्बि०— बाएँ टेढी माँग है,
अम्बालि०— लंबीसी है नाक।
अम्बि०— पूरा जैसे स्वाँग है,
अम्बालि०— बहती रहती नाक॥
अम्बि०— कान होठ दोनों कटे,
अम्बालि०— बाल मैलकी खान।
अम्बि०— दॉत बड़े बिरले फटे,

अम्बालि०— तनमें तनिक न तान ॥
अम्बि०— विद्या बुद्धि जरा नही,
अम्बालि०— मस्तक खाली खोल ।
अम्बि०— शेखी मारे सब कही,
अम्बालि०— भीतर पोला ढोल ॥
अम्बि०— मुँह जैसे सिल हो टॅकी,
अम्बालि०— मधुके छत्ते कान ।
अम्बि०— आँखें पलकोंसे ढँकी,
अम्बालि०— बोली जैसे बान ॥
अम्बि०— अनुरागसे पीता रहे—
अम्बालि०— जीता रहे ! जीता रहे !
अम्बि०— नित भंग भी पीता रहे !—
अम्बालि०— जीता रहे ! जीता रहे !

अम्बि०—आहा, अगर हम दोनो सौते होतीं !

अम्बालि०—खूब होता । क्यो ?

अम्बि—केवल परस्पर झगडा किया करती ।

अम्बालि०—और फिर मेल कर लेतीं ।

अम्बि०—ईश्वर करे, ऐसा ही हो ! हम सौते ही हों ।

अम्बालि०—जिससे जीवनभर हम दोनो अलग न हों ।

अम्बि०—(स्नेहके साथ) अम्बालिका !

अम्बालि०—(स्नेहके साथ) अम्बिका !

(दोनों बड़े स्नेहसे एक दूसरेको देखने लगती हैं ।)

अम्बि०—(एकाएक थमकर) अच्छा औरते व्याह क्यों करती है ?

अम्बालि०—और फिर इन दाढी-मूछोवाले मर्दोंसे ।

अम्बि०—हम ब्याह नही करेंगी, क्यो बहन !

अम्बालि०—अच्छी बात है ! (दोनो गाती हैं।)

मलय पवनमें हिल-मिल उड़कर, परस्तानको जावेंगी।
केवल फूलोंका मीठा मधु, पीकर मौज मनावेंगी॥
शयन केतकी-सुवाससंचित रच, उसपर सो जावेंगी।
चारु चन्द्रमाकी किरणोंमें, सुखसे खूब नहावेंगी॥
कविता व्यजन डुलावेगी, और प्रेम दिखावेगा सपने।
परी सहचरी होगी, देंगे देव हृदय, हम पावेंगी॥
सन्ध्या-मेघ दुकूल, इन्द्रधनु चन्द्रहारसा पहनेंगी।
करनफूल तारोंके होंगे, तम चादर दरसावेंगी॥
भाप साथ नभ चढ़ें बूँदसँग धरतीपर फिर आवेंगी।
नदियों सँग सागर जावेंगी, आँधीके सँग गावेंगी॥

सातवाँ दृश्य

स्थान—युद्धका मैदान

समय—दिन

[युद्ध करनेके लिए उद्यत हस्तिनापुरके महाराज चित्रांगद और गन्धर्वराज चित्रांगद तरवार खींचे खडे हैं ।]

गन्धर्व—माताका दूध छोड़कर, छोटे बच्चे तुम युद्धभूमिमे क्यो आये हो ? हथियार रख दो, मै तुम्हे जानसे नही मारूँगा। सिर्फ अपने रथकी चोटीपर जंजीरसे बाँधकर अपने विजय-गौरवके समान अपने नगरको ले जाऊँगा।

कुमार चित्रा०—मेरी सब सेना नष्ट हो गई है, तो भी प्राण रहते कभी हथियार नही रक्खूँगा। हार नहीं मानूँगा। माताके आशीर्वादसे इस युद्धमे मै अमर हूँ। उन्होने मेरे मस्तकपर अपने चरणोंकी रज लगाकर कहा है—“मै अगर सती हूँ, तो बेटा चित्रांगद तुम युद्धमे जय

पाकर लौट आओगे। " वे आशीर्वादके वाक्य अभीतक मेरे कानोमे गूँज रहे है।

गन्धर्व०—तो फिर मैं क्या करूँ। करो, युद्ध करो। शस्त्र हाथमे लो। अपनेको बचाओ।

(दोनो लड़ते हैं और कुमार चित्रागद चोट खाकर गिर जाते हैं।)

गन्धर्व०—जय प्राप्त कर चुका। अब विजय-गर्वके साथ हस्तिनापुरमे प्रवेश करूँगा।—सेनापति! सेनापति! (प्रस्थान)

[माधवके साथ भीष्मका प्रवेश]

माधव—कुमार इस जगह है वत्स, जो सोचा था वही हुआ। वह देखो, चित्रागद पृथ्वीपर पडे हुए है—

भीष्म—(आग्रहके साथ) जीते है या मर गये ?

माधव—(देखकर) मर गये! मिट्टीके ढेलेके समान अचल पड़े है। शरीर बर्फसा ठडा पड गया है—साँस भी नही चलती।—कुमार! चित्रागद!

भीष्म—(भर्राई हुई आवाजमे) चाचा, यह शोक करनेकी जगह नही है।

[गन्धर्वराजका फिर प्रवेश]

भीष्म—तुम्ही क्या गन्धर्वराज वीर चित्रागद हो ?

गन्धर्व०—हाँ, और तुम कौन हो ?

भीष्म—मै भीष्म हूँ!

गन्धर्व०—नाम मैने सुना है।

भीष्म—गन्धर्वराज, यह बालककी हत्या किस लिए की है ?

गन्धर्व०—हत्या नही की है, इसे युद्धमे मारा है।

भीष्म—युद्ध ? इसे युद्ध कहते है ? दुधमुँहे बच्चेको मारकर यह डींग मारना क्या तुम्हे सोहता है गन्धर्वराज ? मनुष्यसे तुम गन्धर्व श्रेष्ठ हो। यह दुर्बलोपर अत्याचार, जबरदस्ती स्वाधीनता छीनना, यह शान्तिभंग करना और यह दर्प दिखाना गन्धर्वोके ईश्वरको सोहता है ?—कहो, किस लिए तुमने यह युद्ध ठाना है ?

गन्धर्व०—दिग्विजय करनेके लिए निकला हूँ। इसी कारण यह युद्ध ठाना है।

भीष्म—यह युद्ध नहीं, दस्युओका रोज़गार है !

गन्धर्व०—गन्धर्वलोग हीन मनुष्यजातिसे बातचीत नहीं करते।

भीष्म—अच्छा। पर हत्या करते हैं ! अब तुम अपने राज्यको लौट जाओ गन्धर्वराज ।

गन्धर्व०—रे मनुष्य, उसके पहले हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर अधिकार करूँगा। सुना है, शान्तनुकी रानी अनन्त-यौवना है। देखूँ अगर—

भीष्म—सावधान ! सम्राज्ञीके लिए अगर कोई अपमानका शब्द कहा, तो संसारसे तुम्हारा नाम उठ जायगा—सिर धड़से अलग होकर दमभरमे धरतीपर लोटने लगेगा।

गन्धर्व०—उद्धत युवक, हस्तिनापुरकी राह छोड़ दे।

भीष्म—हस्तिनापुरमे घुसनेका तुम्हे अधिकार नही है।

गन्धर्व०—मेरी राह कौन रोकेगा ।

भीष्म—मैं भीष्म।

गन्धर्व०—हट जाओ, हस्तिनापुरकी राह छोड़ो।

भीष्म—कुशलसे अपने राज्यको लौट जाओ, कहता हूँ। भीष्मके जीते रहते शत्रु हस्तिनापुरमें पैर नही रख सकता।

गन्धर्व०—तो युद्ध करो।

भीष्म—युद्ध, किससे? (बलपूर्वक गन्धर्वराजका हाथ उमेठकर तरवार छीन लेते और फेंक देते हैं।)

भीष्म—जाओ, अपने राज्यको लौट जाओ। और मैं कहता हूँ, सो सुनो।—दुर्बलके ऊपर कभी अत्याचार न करना। घमंड मत करना। चाहे जितने बड़े तुम हो, याद रक्खो, तुमसे भी बड़े इस संसारमें है। अगर न भी हो, तो भी प्रकृति तुम्हारे किये हुए स्वेच्छाचार और अत्याचारको नहीं सहेगी। तुम भी ब्रह्माण्डके नियमके दास हो।

(गन्धर्वराज चित्रांगदका प्रस्थान)

भीष्म—महर्षि व्यास, तुमने ठीक कहा—"क्षत्रियका धर्म युद्ध है—शास्त्रचर्चा नहीं। मैं मूढ़ हूँ। अभिमानमें पड़कर क्षत्रियका धर्म छोड़कर मैंने ही यह सर्वनाश किया।—स्वर्गके देवगण, क्षमा करना।

माधव—चित्रांगद! चित्रांगद! रुधिरसे भीगे हुए मुँह फिराये इस धूलपर क्यों पड़े हो?—वत्स!—प्राणाधिक!—

भीष्म—ना, तू क्षत्रियका बालक है! तुझे यही सोहता है!—देशके लिए जीवन और देशके हितके लिए मृत्यु—यही तो क्षत्रिय वीरका, कर्त्तव्य है—धर्म है। यही तुझे सोहता है। मैं अन्त समय ऐसी ही सेज पाऊँ—ऐसे ही सो जाऊँ।—खुले हुए नील आकाशके नीचे युद्धभूमिमें ऐसी ही अन्तिम शय्या बिछी हो, सामने मरणका रक्त-सागर उमड़ रहा हो, उसका शब्द सुन पड़ रहा हो और चारों ओर समरका कोलाहल मचा हो।

(पर्दा गिरता है।)

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—गगातटपर काशीराजका प्रमोद-वन

समय—सन्ध्यासे कुछ पहले

[हथियारबद भीष्म अकेले खड़े हैं]

भीष्म—यह वही कुंजवन है, वही दूरतक बहनेवाली, हिल्लोल कल्लोलमयी, पवित्र प्रवाहवाली गंगा है। वही शान्त सन्ध्या है। वैसे ही धीरे धीरे मंद मृदु स्नेहपूर्ण पवन डोल रहा है। ठीक इसी जगह इसी सन्ध्याके समय, इसी बरगदके तले !—वह दिन और आजका दिन ! बीचमे बीस वर्षका अन्तर पड गया है ! इस वृक्षके नीचे गंगा-तटपर जरा बैठकर विश्राम कर लूं। (प्रस्थान)

[माधवका प्रवेश]

माधव—देवव्रत जबसे यहाँ आये है, तबसे इतने उदास—इतने कातर क्यो है ! मुझसे भी बात नही करते। क्यो ? कौन जाने !—वह लो, पेडकी डालमे तरवार टाँगकर जमीनपर लेटे हुए एकटक उस ओर ताक रहे हैं।—ना, उन्हे अकेले न रहने दूँगा (प्रस्थान)

[अम्बिका और अम्बालिकाका प्रवेश]

अम्बि०—ढँग कुछ ऐसे देख पडते है कि ये लोग आखिरको हमारा व्याह किये बिना नही छोडेगे।

अम्बालि०—हमारा व्याह किये बिना जैसे इन लोगोंको नींद ही नहीं आती।

अम्बि०—और हमे भी अब इसमे कोई आपत्ति नहीं है। क्यो बहन?

अम्बालि०—हॉ अब हम लोगोकी अवस्था भी ब्याहने योग्य हो गई है।

अम्बि०—सो—हो तो गई ही है।

अम्बालि०—इसीको स्वयंवरा कहते है।

अम्बि०—आप ही वर चुन लेना होता है न इसीसे स्वयंवरा कहते है।

अम्बालि०—मैया रे!

अम्बि०—क्या होगा!

अम्बालि०—सब राजा लोग आ गये है?

अम्बि०—कभीके आ गये है!—वे केवल रात बीतनेकी राह देख रहे है।

अम्बालि०—जान पड़ता है, इस रातको उन्हे नीद ही न आवेगी

अम्बि०—केवल मुँह बाये पूर्वकी ओर ताकते रहेगे।

अम्बालि०—अच्छा, इसी समय बडी दीदी भी स्वयंवरा होगी?

अम्बि०—क्यो—होगी क्यों नही!

अम्बालि०—लेकिन उनकी अवस्था बहुत हो गई है।

अम्बि०—अवस्था बहुत होनेसे क्या होता है—देखनेसे तो उतनी उमर नही जान पड़ती।

अम्बालि०—बल्कि हम लोगोंसे छोटी जान पडती है।

अम्बि०—बिलकुल एकहरा डील है न!

अम्बालि०—लेकिन यह निश्चय है कि पिताजी दीदीको उनकी उमर छुपाकर ब्याहे देते है।

अम्बि०—देने दो। तेरा उसमे क्या!—तूने भी इनमेसे किसी राजाको देखा है?

अम्बालि०—एलो! देखा क्यो नही।

अम्बि०—भला कोई तुझे पसंद आया है?

अम्बालि०—आया क्यो नही!

अम्बि०—कौन आया है?

अम्बालि०—सुनेगी? (कानमे कुछ कहती है।)

अम्बि०—दूर वेहया!

अम्बालि०—दुर कलमुँही! (दोनो जोरसे हँसती हैं)

अम्बि०—अरे वह दीदी है, दीदी!—

अम्बालि०—दीदी!

अम्बि—अभी हम लोगोको नही देखा है।

अम्बालि०—आप-ही-आप कुछ बक रही है।

अम्बि०—चुप।

अम्बालि०—हुश्। (दोनो छिप रहती हैं)

(चिन्तित भावसे अम्बाका प्रवेश)

अम्बा०—रग विरंगी पताकाओंसे पुरी सुशोभित हो रही है। फाटकके ऊपर शहनाईकी रागिनी आनन्दकी मधुर वर्षा कर रही है। मांगलिक वाजोका शब्द गली-गली गूँज रहा है।—लेकिन जान पड़ता है, वह पीत पताका मेरे रक्तसे रँगी हुई है, और यह फाटककी ऊँची अँटियापर शहनाई नहीं, मेरे वलिदानका वाजा वज रहा है।—कलेजा धड़क रहा है। वारवार दाहिनी आँख फड़क रही है।—इस कुंज-वनमें कौन है?—(हँसकर) अम्बिका और अम्बालिका है! दोनो दो कवूतरियोकी तरह वेखटके खेल रही हैं। (प्रस्थान)

(अम्बिका और अम्बालिका निकल आती हैं ।)

अम्बि०—सुना ?

अम्बालि०—क्या ?

अम्बि०—दीदी हमे कबूतरी बना गई !

अम्बालि०—बना गई, अच्छा किया ।

(अम्बालिका गाने लगती है
अम्बिका भी उसका साथ देती है ।)

लावनी

जो न विश्वमें विश्वव्यापी हार्दिक प्रेम प्रकट होता ।
जन्म वृथा था तो जीवन भी मरुकी भूमि विकट होता ॥
कुंजोंमें, वृक्षोंमें, देखो हरेक लतामे पत्तोंमें ।
एक प्रकृति बहु रंग दिखाती फूलोंके इन छत्तोंमें ॥
विविध गन्ध फैलाता अनुपम प्रेम यहाँपर खिला हुआ ।
देख पड़े बस यहीं, हृदय है सबका सबसे मिला हुआ ॥
जो न विश्वमें विश्वव्यापी० ॥ १ ॥
वह है केवल चिन्ता करना, जोड़-हिसाब लगाना बस ।
अंक खीचना, रुपये गिनना, दिनभर जान खपाना बस ॥
यह है आँखें मूँद मजेसे मनमें होकर खूब मगन ।
लिये सहारा तकियेका यों वंशी सुनना, लगा लगन ।
जो न विश्वमें विश्वव्यापी० ॥ २ ॥
केवल तुष्ट पुष्ट वह करता—भूख लगे खाना पाना ।
यह है केवल आँख मूँदकर मधुरस पीना मनमाना ॥
धूल और काँटोंमें केवल वह दौड़ाना, पीडा है ।
खाना हवा चाँदनीमें यह नौकापर जलक्रीड़ा है ॥
जो न विश्वमें विश्वव्यापी० ॥ ४ ॥

अम्बि०—अरे यह कौन है ?

अम्बालि०—हाँ बहन, यह कौन है ?

अम्बि०—इसने सब मिट्टी कर दिया।

अम्बालि०—ए: ।

अम्बि०—अबकी नहीं भागेगी।

अम्बालि०—ना, अबकी आफतका सामना करेगी।

अम्बि०—चुप !

अम्बालि०—चुप !

[चिन्तितभावसे भीष्मका प्रवेश]

अम्बि०—किसी तरफ नहीं देखता।

अम्बालि०—कुछ सोच रहा है !

अम्बि०—क्या सोच रहा है !

अम्बालि०—उसीसे पूछ लिया जाय !

अम्बि०—(आगे बढ़कर) मै कहती हूँ (खाँसना)—मैं कहती हूँ—महाशय !

(अम्बालिका आगे बढ़कर खाँसती है। भीष्म चौंककर ठहर जाते हैं।)

अम्बि०—आप कौन हैं ?

अम्बालि०—कौन वर्ण है ?

अम्बि०—कौन जाति है ?

अम्बालि०—देवता है ?

अम्बि०—या दैत्य ?

अम्बालि०—या गन्धर्व ?

अम्बि०—या किन्नर ?

अम्बालि०—या यक्ष ?

अंबि०—या राक्षस ?

अंबा०—या—

भीष्म—(डरे हुए भावसे) मै—मैं—

अंबि०—ओः आप है ?—आदमी पहलेहीसे कह देता है।

अंबालि—आपको बताना नही पडेगा, पहचान लिया।—सो आप यहाँ ?

अंबि०—इस समय ?

अंबालि०—क्या सोचकर ?

भीष्म—जी। मै—सो—

अंबि०—ना, इस तरह बननेसे काम नहीं चलेगा।

अंबालि—हम इन बातोंको पसंद नही करतीं।

अंबि०—पहले आप यह बताइए,' यहाँ आप कुछ सोचकर आये है ?—

अंबालि०—या राह भूलकर चले आये है ?

अंबि०—प्रश्न यही है।

अंबालि०—सीधी बात है।

भीष्म—मेरा यहाँ—

अंबि०—पहले मेरी बातका जवाब दीजिए !

अम्बालि०—ना पहले मेरी बातका जवाब दीजिए !

अंबि०—(बनावटी क्रोधसे) अंबालिका !

अंबालि०—(वैसे ही भावसे) अम्बिका !

भीष्म—मै—मैं जानता नही था कि—

अंबि०—यह खूब संभव है। न जानना ही बहुत संभव है।

भीष्म—मैंने सोचा था कि—

अबालि०—सो सोचा होगा ही !

अंबि—सो अच्छा ! आप जब जानते नही थे कि—

अंबालि०—आपने सोचा था कि—

अंबि०—तब तो कुछ कहना ही नहीं है।

अबालि०—मामला ही खतम हो गया।

अंबि०—अब प्रश्न यह है कि आप—

अंबालि—है कौन ?—यही प्रश्न है।

भीष्म—मै हस्ति—

अंबि०—किसने कहा कि आप हस्ती है ?

अबालि०—आप हस्ती नही है, या अश्व नही है, प्रश्न नही है।

अम्बि०—प्रश्न तो यह है कि आप है कौन ?

अबालि०—सीधी बात है।

भीष्म—मै—

अंबि०—सोच-समझ कर जवाब देना।

अबालि०—संक्षेपमे।

भीष्म—मै भीष्म—

दोनो बालिकाये—ओ बाबा ! (पीछे हटती है।)

अम्बि०—आप—आप—आप—आप है—

अंबालि०—भीष्म। वेशक अचरजकी बात है।

भीष्म—इसमे तुमने अचरज क्या देखा ?

अंबि०—अचरज नहीं है ?

अंबालि०—ओ बाबा !

भीष्म—अब तुम बताओ, कि तुम कौन हो ?

अम्बि०—हम?—हम कौन है?—एलो! (जोरसे हँसती है।)

अंबालि०—हम?—ओ वहन! (जोरसे हँसती है।)

अंबि०—हम—हम—है।

अंबालि०—बस!

भीष्म—तुम काशीनरेशकी कन्या हो।

अंबालि०—अरे पहचान लिया रे—पहचान लिया!

अंबालि०—ठीक जान लिया!

अंबि०—महाशय भीष्म, आपने कैसे जाना कि—

अंबालि०—हम काशीनरेशकी कन्या है?

अंबि०—क्या देखनेसे जान पडता है?

अंबालि०—मत्थेपर लिखा है?

अंबि०—सो जब जान ही लिया, तब स्वीकार कर लेना ही अच्छा है।

अंबालि०—वेशक!

अंबि०—हॉ महाशय,—

अंबालि०—हम काशीनरेशकी कन्या है। ये बडी है—

अंबि०—और ये छोटी है।

अंबालि०—"उमर बडी होती नही, बडा जगतमे ज्ञान।"

भीष्म—तुम उनकी बहने हो?

अंबि०—'उनकी?' किनकी?

अंबालि०—इस 'उनकी' के भीतर 'वे' कौन है?

भीष्म—अर्थात्—

अंबि—'अर्थात्' की जरूरत नही है। 'वे' कौन है?

अंबालि०—अभीतक नही समझी?

अंबि०—ओ समझ गई।

अंबालि०—महाशय, अब आपके कहनेकी जरूरत नही है।

अंबि०—आप जब (इशारेसे)

अंबालि०—और वे जब (इशारेसे)

अंबि०—वाह! यह अच्छा जोड मिलेगा।

अंबालि०—मालूम भी खूब अच्छा होगा।

अंबि०—लेकिन आपका चेहरा—

अबालि०—देखे।

अंबि०—वही तो—

अबालि०—यह तो आपने बडे भारी खटकेमे डाल दिया।

भीष्म—क्यो ?

अबि०—आप है भीष्म।

अबालि०—यही नाम बताया है न ?

भीष्म—हॉ देवी।

अंबि०—वही तो।

अबालि०—हूँ! तब तो चिन्तामे डाल दिया।

भीष्म—क्यों ?

अंबि०—आपका चेहरा तो भीष्म ऐसा नहीं है।

अबालि—बिलकुल ही नही।

भीष्म—तुमने पहले क्या कभी उन (भीष्म) को देखा है ?

अंबि०—ना। लेकिन चेहरा देखकर जान पड़ता है, आपका नाम चन्द्रकान्त है।

अंबालि०—या ऐसा ही कुछ और होगा।

भीष्म—क्यो ?

अंबि०—सो तो नही जानती, लेकिन—

अंबालि०—ऐसा ही मालूम पड़ता है।

अंबि०—आपका चेहरा—कुछ गंभीर अवश्य है।

अंबालि०—लेकिन भीष्म (भयानक) नही है।

अंबि०—ऐसे चेहरेके साथ मै तो कभी व्याह न करती।

अंबालि०—और नाम भी जरा नीरस है।

अंबि०—तो फिर महाशय भीष्म, हम जाती है।

अंबालि०—हम लोगोका व्याह है न! हाथमे बहुतसे काम ले रक्खे है! (दोनो जाना चाहती हैं।)

अंबि०—(फिरकर) महाशय, कुछ खयाल न करना।

अंबालि०—(फिरकर) पसद नही आये, क्या करे!

अंबि०—लेकिन दीदीके साथ—

अंबालि०—हो, तो अच्छा। जोडी मिल जायगी।

(दोनोका हॅसते हॅसते प्रस्थान)

भीष्म०—दोनो बालिकाये सुन्दरी और आनन्दमयी है। जैसे दो नदियोका निर्जन संगम हो।—कोई काम नही है, केवल हॅसना और गाना, हृदयस्थलमे केवल निर्मल नीलिमा क्रीडा करती है, और केवल उसीका अवारित संगीत-मुखर स्वच्छ उच्छ्वासपूर्ण जल तट-भूमिमे आकर लगता है। दोनो किशोर और सुन्दर चंपेकी कलियॉ अपनी ही सुवासमे मस्त हो रही है, और कोई काम नहीं है, ऊषाके प्रकाशमे धीमी हवाके झोकोसे नित्य परस्पर एक दूसरेके शरीरपर गिर गिर पड़ती है। जैसे एक शान्त पहाडी झरनेके झरनेकी मधुर-ध्वनि और दूसरी उसकी प्रतिध्वनि हो। वह काहेका शब्द है?

(शाल्व अपने सिपाहियोंके साथ भागना चाहता है)

धीवर०—यह नही हो सकता बच्चा !

(अपने साथियोंके साथ धीवरराज शाल्वकी राह रोककर खडा हो जाता है।)

भीष्म—युद्ध कर—क्षत्रियकुलकलंक !

शाल्व—(भीष्मके पैरोंपर तरवार रखकर हाथ जोड़कर घुटने टेककर) क्षमा करो भीष्म ।

धीवर०—(लात मारकर शाल्वको धरतीपर गिराकर उसकी छातीपर बैठ जाता है) ले क्षमा करता हूँ ।—बर्छा भोक दूँ! (बर्छा उठाता है।)

(शाल्व प्रार्थनापूर्ण दृष्टिसे भीष्मकी ओर देखता है।)

भीष्म—छोड़ दो। (शाल्वसे) अपनी तरवार लो महाराज !

(शाल्वकी तरवार उसे दे देते हैं।)

धीवर०—अच्छा, कुमार कहते हैं, इससे छोड़े देता हूँ । लेकिन इस धीवरोंके चौधरीको याद रखना छत्री महाराज !

(शाल्व उठकर जाना चाहता है।)

भीष्म—ठहरो सौभराज ! (शाल्व खडा हो जाता है।)

भीष्म—सुनो सौभराज, निहत्थे बन्दीकी हत्या करना क्षत्रियक धर्म नहीं है! याद रखना। यहाँ तक कि जो लात मारे, वह भी यदि क्षमा माँगे, तो उस लात मारनेका भी बदला लेनेकी जरूरत नहीं होती ।—जाओ । (अपने सिपाहियोंसहित शाल्वका प्रस्थान)

माधव—मामला क्या था देवव्रत ?

भीष्म—ये भी क्षत्रिय है !

धीवर०—छोड दिया भैया ?

भीष्म—धीवरराज, तुम साहसी पुरुष हो।

धीवर०—खुले मैदानमें यदि निकल पाऊँ, तो फिर मै किसीस नही डरता !—सिर्फ घरमे अपनी घरवालीको डरता हूँ।

भीष्म—क्षत्रिय इस तरहके होते है।—परशुरामने क्या यो ही—अब इस बातको जाने दो　　(प्रस्थान)

(माधव और धीवरराज साथ चलते है।)

माधव—तुम यहॉ कैसे आये ?

धीवर०—ब्याह करने।

माधव—क्यो ! तुम्हारी स्त्री ?

धीवर०—बहुत ही झगडा करती है।　　(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—काशीनरेशका महल

समय—प्रात:काल

[काशीनरेश और राजकुमार]

काशी०—कैसा आश्चर्य है ! रातको मेरे प्रमोद-वनमे—

राजकु०—वे लाशे सौभराज शाल्वके आदमियोकी है; इसका प्रमाण पाया गया है।

काशी०—लेकिन उन मृत शरीरोपर हथियारका कोई निशान नही है ?

राजकु०—नही पिताजी !

काशी०—कल शामको बागमे अंबिका और अबालिकासे भीष्मकी भेट हुई थी।

राजकु०—हॉ हुई थी।

काशी०—यही तो सन्देहकी बात है!—लेकिन भीष्म यह काम करेगे ! मतलब क्या है, कुछ समझमे नहीं आता। अच्छा जाओ। जाकर स्वयंवरकी तैयारी करो।　　(राजकुमारका प्रस्थान)

काशी०—चिन्ताकी बात है ! ठीक व्याहके पहले—

[माधवका प्रवेश]

माधव—आप काशीनरेश है ?

काशी०—ब्राह्मण,—(प्रणाम करके) मैने आपको नही पहचाना

माधव—मै पहले स्वर्गवासी महाराज शान्तनुका सखा था। इ समय उनके पुत्रोका अभिभावक हूँ।—मुझे हस्तिनापुरके युवरा देवव्रत भीष्मने हस्तिनापुरके महाराज विचित्रवीर्यके लिए आपकी दो छोटी कन्याओको मॉगने आपके पास भेजा है।

काशी०—यह क्या ब्राह्मण, यह तो स्वयवर-सभा है !

माधव—तो महाराजको प्रार्थना अस्वीकार है ?

काशी०—निश्चय !

माधव—मैने भी यही सोचा था !—जय हो ! (प्रस्थान)

काशी०—यह क्या ढॅग है !

[सुनन्दाका प्रवेश]

सुनन्दा—महाराजको रानी साहबा जरा भीतर बुला रही है।

काशी०—क्यो !

सुनन्दा—बडी कुमारी बहुत रो रही है।

काशी०—रो रही है ?—क्यो ?

सुनन्दा—मालूम नही।

काशी०—मै आता हूँ, तुम चलो।

(सुनन्दाका प्रस्थान)

काशी०—ये सब बाते निश्चय ही किसी होनहार अनिष्टकी सूच कर रही है।—कुछ समझमे नहीं आता क्या होगा ! (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—काशी, स्वयंवर-सभा

समय—प्रात.काल

[क्षत्रिय राजे और मन्त्रीसहित धीवरराज बैठे हैं। पास ही काशीराज-पुत्र और भाट वगैरह खडे हैं।]

शाल्व—काशीराज कहाँ है ?

राजकुमार—वे कन्याओको लिये आ रहे है।

१ राजा—(धीवरराजकी ओर इशारा करके) यह कौन है ?

राजकु०—हाँ यह कौन है ? तुम कौन हो जी ?

धीवर०—मै धीवरराज हूँ।

राजकु०—क्यो भाई,—तुम यहाँ किस लिए आये हो ?

धीवर०—मै भी एक स्त्रीका उम्मेदवार हूँ।

राजकु०—उम्मेदवार कैसे ?

धीवर०—मै ब्याह करूँगा।

राजकु०—तुम ? तुम कौन जाति हो ?

धीवर०—धीवर।

राजकु०—मल्लाह ?

धीवर०—नही, धीवर।

राजकु०—मै पूछता हूँ, तुम्हारा रोजगार तो मछली पकडना ही है ?

धीवर०—अच्छा समझ लो कि यही है, तो क्या बुरा है ? दामाद फँसानेकी अपेक्षा तो मछली पकडना हजार दर्जे अच्छा है।

राजकु०—दामाद फँसाना कैसा ?

धीवर०—नहीं तो यह और क्या है ! कुछ बेचारे भले आदमियोके लडकोको न्यौता देकर बुलाना और उनकी पीठपर सदाके लिए

एक गधेका बोझ लाद देना—इससे तो मछली पकड़ना बहुत अच्छा है। और फिर मछली तो खाई जाती है, दामादको तो कोई खाता भी नहीं।

राजकु०—यह क्या बक रहा है!

शाल्व०—इसे बाहर निकाल दो राजकुमार।

धीवर०—निकाल दोगे! निकाल तो दो देखे!

राजकु०—यह क्षत्रियोंकी सभा है। यहाँ धीवरको आनेका अधिकार नहीं है।

धीवर०—मै राजा हूँ।

शाल्व—धीवर राजा कैसा?

धीवर०—मै हस्तिनापुरके महाराजका ससुर हूँ।

राजकु०—ससुर कैसे?

धीवर०—महाराज शान्तनुने मेरी बेटी मत्स्यगन्धाको मुझसे माँगकर उसके साथ अपना ब्याह किया है।

राजकु०—सच?

धीवर०—बिल्कुल ही अनजान बन गये। देखते हो मन्त्री, बिल्कुल अनजान बन गये। देखते हो?

मन्त्री—जी हाँ।

धीवर०—'जी हाँ' क्या!—कहो 'हाँ महाराज।' यह सदा याद रक्खो कि मैं राजा हूँ।

राजकु०—क्षत्रिय लोग नीच जातिकी लड़की ले सकते है, लेकिन किसी नीच जातिवालेको अपनी लड़की दे नहीं सकते।

धीवर०—तब तो यह एक बड़ी भारी कुरीति है।—क्यो मन्त्री?

मन्त्री—हमारे महाराजका घराना यहाँ आये हुए किसी राजाके घरानेसे कम नहीं है।

राजकु०—धीवरका और घराना !—वह तो स्वतःसिद्ध शूद्र और नीच जाति है ।

धीवर०—मन्त्री, ये लोग मेरा अपमान कर रहे है । देखते हो ?

मन्त्री—जी, सो तो देख ही रहा हूँ ।

धीवर०—फिर 'जी !' कहो—'देखता हूँ महाराज !'

राजकु०—उठ जाओ ।

धीवर०—क्यो ?

शाल्व—तुम यहाँ क्या करोगे ?

धीवर०—ब्याह करूँगा ।

राजकु०—सीधी तरह न उठोगे, तो आदमी गर्दना देकर निकाल देगा ।

धीवर०—क्या गर्दना देकर ?

राजकु०—हाँ ।

धीवर०—गर्दना ?

राजकु०—हाँ, हाँ, गर्दना ।

धीवर०—मन्त्री—

राजकु०—उठो आसनसे । नहीं तो—

धीवर०—क्यो ? उठूँ क्यो ?—मन्त्री !

मन्त्री—(कानमे कहता है) राजासाहब, आसनसे उठ आईए ।

धीवर०—क्यो ? क्यो ? आसनसे क्यो उठूँ ? आसनसे—

मन्त्री—पहले उठ आइए, फिर बात कीजिएगा । नहीं तो—

धीवर०—नहीं तो क्या ?

मन्त्री—नहीं तो अपमान होगा ।

धीवर०—सच, अपमान होगा ?

(राजकुमार गर्दनके पास हाथ ले जाता है)

मन्त्री—ए लीजिए, अपमान हुआ ।

धीवर०—ऐ—ऐ—

मन्त्री—उठिए । तो सब इज्जत गई !

धीवर०—ऐ—(उठता है)

मन्त्री—अब बाहर निकल चलिए ।

धीवर०—बाहर क्यों निकल चलूँ ?

मन्त्री—पहले निकल चलिए । नहीं तो—

धीवर०—अपमान होगा क्या !

मन्त्री—होनेमे बाकी क्या है ! चलिए—

धीवर०—बाप रे।—चलो चलो। (जाते जाते लौटकर) लेकिन—

मन्त्री—फिर ‘ लेकिन ’—चले आइए ।

(हाथ पकड़कर खींच ले जाता है।)

शाल्व—इसे यहाँ आने किसने दिया ?—लो, वे महाराज आ रहे हैं।

[शखध्वनिके साथ काशीराज और घूँघट काढ़े हुए उनकी तीनो सज्जिता कन्याओका प्रवेश]

द्वारपाल—महाराजकी जय हो ! (बाजा बजता है।)

काशीराज—महाराजवृन्द, आप लोगोके पधारनेसे मेरा राज्य, मेरा महत्त्व और मेरी सभा धन्य हो गई ।

बन्दीजन पढ़ते हैं—

वन्दे रत्नप्रभवमधिपं राजवंशप्रदीपं ।
शत्रुत्रासं प्रवलमतिशः क्षेममौलिं वरेण्यम् ॥
धन्या काशिस्त्वयि समुदिते धन्यमेतत्कुटीरं ।
आगच्छ स्वःप्रतिमनगरीं स्वागतं ते क्षितीश ॥

काशी०—सब राजालोग आ गये ?

राजकु०—हॉ पिताजी ।

काशी०—मेरी प्यारी बड़ी कन्या अंबा, तो फिर अब तुम अपनी रुचिके अनुकूल वरको वरण करो।

(अंबा अपनी सखी सुनन्दाके साथ जाकर एकदम शाल्वके गलेमे जयमाला डालना चाहती है। इतनेहीमे माधवके साथ भीष्म प्रवेश करते हैं।)

भीष्म—ठहरो।

(सब चौंककर उनकी ओर देखने लगते हैं। अंबा रुक जाती है।)

काशी०—(आगे बढ़कर) महामति भीष्म आओ बैठो।

भीष्म—बैठनेकी जरूरत नही है काशीराज। मै यहाँ निमन्त्रित होकर नही आया। मै ब्याह नही करना चाहता। मेरे लिए यहाँ आसन भी नही डाला गया।

काशी०—तो फिर मैं क्या यहाँ अकस्मात् हस्तिनापुरके युवराजके आनेका कारण पूछ सकता हूँ।

भीष्म—मै काशीराजकी छोटी दोनो कन्याओको हस्तिनापुरके महाराज विचित्रवीर्यके लिए माँगता हूँ।

काशी०—सो कैसे होगा युवराज ! यह तो स्वयंवर सभा है।

भीष्म—सो मै जानता हूँ काशीराज। तो भी मै काशीराजकी इन दोनो कन्याओको चाहता हूँ। अगर महाराज मेरे इस प्रस्तावको स्वीकार न करेगे, तो मै इन कन्याओको बलपूर्वक हरकर ले जाऊँगा।

काशी०—कुमार, यह असंभव है।

भीष्म—तो महाराज, मुझे क्षमा करे, मै इन दोनो कन्याओको हरे लिये जाता हूँ। जिसमे ताकत हो, वह मुझे रोके। आओ—

[अंबाका हाथ पकड़ते हैं]

शाल्व—इतनी हिम्मत ! (तरवार खींच लेता है)

काशी०—निश्चय ही कुमारका सिर फिर गया है। नही तो इस स्वयवर सभामे विना बुलाये आकर—

(राजकुमार गर्दनके पास हाथ ले जाता है)

मन्त्री—ए लीजिए, अपमान हुआ ।

धीवर०—ऐ—ऐ—

मन्त्री—उठिए । तो सब इज्जत गई !

धीवर०—ऐ—(उठता है)

मन्त्री—अब बाहर निकल चलिए ।

धीवर०—बाहर क्यों निकल चलूँ ?

मन्त्री—पहले निकल चलिए । नहीं तो—

धीवर०—अपमान होगा क्या !

मन्त्री—होनेमे बाकी क्या है ! चलिए—

धीवर०—बाप रे ।—चलो चलो । (जाते जाते लौटकर) लेकिन—

मन्त्री—फिर 'लेकिन'—चले आइए ।

(हाथ पकडकर खींच ले जाता है ।)

शाल्व—इसे यहाँ आने किसने दिया ?—लो, वे महाराज आ रहे हैं।

[शखध्वनिके साथ काशीराज और घूँघट काढे हुए उनकी तीनो सजिता कन्याओका प्रवेश]

द्वारपाल—महाराजकी जय हो ! (बाजा बजता है ।)

काशीराज—महाराजवृन्द, आप लोगोके पधारनेसे मेरा राज्य, मेरा महत्त्व और मेरी सभा धन्य हो गई ।

वन्दीजन पढते हैं—

वन्दे रत्नप्रभवमधिपं राजवंशप्रदीपं ।
शत्रुत्रासं प्रबलमतिशः क्षेममौलिं वरेण्यम् ॥
धन्या काशिस्त्वयि समुदिते धन्यमेतत्कुटीरं ।
आगच्छ स्वःप्रतिमनगरीं स्वागतं ते क्षितीश ॥

काशी०—सब राजालोग आ गये ?

राजकु०—हाँ पिताजी ।

काशी०—मेरी प्यारी बड़ी कन्या अंबा, तो फिर अब तुम अपनी रुचिके अनुकूल वरको वरण करो।

(अंबा अपनी सखी सुनन्दाके साथ जाकर एकदम शाल्वके गलेमें जयमाला डालना चाहती है। इतनेहीमे माधवके साथ भीष्म प्रवेश करते हैं।)

भीष्म—ठहरो।

(सब चौंककर उनकी ओर देखने लगते हैं। अंबा रुक जाती है।)

काशी०—(आगे बढ़कर) महामति भीष्म आओ बैठो।

भीष्म—बैठनेकी जरूरत नही है काशीराज। मै यहाँ निमन्त्रित होकर नही आया। मै व्याह नहीं करना चाहता। मेरे लिए यहाँ आसन भी नही डाला गया।

काशी०—तो फिर मै क्या यहाँ अकस्मात् हस्तिनापुरके युवराजके आनेका कारण पूछ सकता हूँ।

भीष्म—मै काशीराजकी छोटी दोनो कन्याओको हस्तिनापुरके महाराज विचित्रवीर्यके लिए माँगता हूँ।

काशी०—सो कैसे होगा युवराज! यह तो स्वयंवर सभा है।

भीष्म—सो मै जानता हूँ काशीराज। तो भी मै काशीराजकी इन दोनो कन्याओको चाहता हूँ। अगर महाराज मेरे इस प्रस्तावको स्वीकार न करेगे, तो मै इन कन्याओको बलपूर्वक हरकर ले जाऊँगा।

काशी०—कुमार, यह असंभव है।

भीष्म—तो महाराज, मुझे क्षमा करे, मै इन दोनो कन्याओको हरे लिये जाता हूँ। जिसमे ताकत हो, वह मुझे रोके। आओ—

[अंबाका हाथ पकड़ते हैं]

शाल्व—इतनी हिम्मत!　　(तरवार खींच लेता है)

काशी०—निश्चय ही कुमारका सिर फिर गया है। नही तो इस स्वयंवर सभामे बिना बुलाये आकर—

भीष्म—जानता हूँ महाराज, कि इस स्वयंवरमे हस्तिनापुरके राजाको क्यो निमन्त्रण नहीं दिया गया। इसका कारण यही है कि वर्तमान महाराजकी माता धीवरकी कन्या है। आप लोगोने पहले ही मृत महाराज शान्तनुके ससुर धीवर-राजको इस सभासे निकाल बाहर कर दिया है लेकिन भीष्म अपने जीते रहते अपने पिताका अपमान कभी नही होने देगा—यह याद रखिएगा हस्तिनापुरके अधिपति महाराज विचित्रवीर्यकी स्त्रीके रूपमे मै इन कन्याओंको लिये जाता हूँ। जिसमें शक्ति हो, वह मुझे रोके।

शाल्व—महाराजाओ!

(सब राजे सिंहासनोपरसे उठकर भीष्मके विरुद्ध तरवारे खीच लेते हैं।)

भीष्म—सैनिको!

[दश सशस्त्र सैनिकोका प्रवेश]

भीष्म—इन कन्याओको अपने घेरेमे ले जाकर मेरे रथपर बिठा दो। कोई राहमे रोके, तो शस्त्र चलानेमे जरा भी संकोच न करो। (माधवसे) चाचा, आप भी इनके साथ जाइए।

(सैनिकगण तीनो कन्याओंको घेरकर ले जाते हैं। माधव भी साथ जाता है।)

भीष्म—अब महाराजाओ, अगर आप लोग एक एक करके या सब मिलकर, हस्तिनापुरके महाराजके विरुद्ध खडे होना चाहते हैं तो अकेला भीष्म आप सबको युद्धके लिए आह्वान करता है।

शाल्व—आक्रमण करो।

(सब मिलकर भीष्मपर आक्रमण करते हैं।)

भीष्म—तो फिर बाहर आओ। इस विवाह-सभाको तुम्हारे रक्तसे कलुषित नहीं करूँगा।

(तरवार घुमाते हुए और अपनेको बचाते हुए चलते हैं।)

शाल्व—यहींपर मार डालो। (राह रोकता है।)

भीष्म—तो फिर यही हत्याकाण्ड शुरू हो! (राजाओपर आक्रमण)

(पॉच छः राजा भीष्मकी तरवार खाकर जमीनपर गिर पडते हैं। शाल्व भी घायल होकर गिर पडता है।)

चौथा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुरके महलका एक हिस्सा

समय—तीसरा प्रहर

[सत्यवती अकेली]

सत्यव०—मेरा लडका ब्याहा गया, और मुझे उसकी खबर तक नहीं! मुझसे राय लेनेकी भी जरूरत नही समझी गई! अपने ही घरमें—मैं ऐसी घृणित हूॅं!

[विचित्रवीर्यका प्रवेश]

विचित्र०—मा मा, तुमने सुना? (खॉसता है)

सत्य०—क्या बेटा!

विचित्र०—सब राजा एक ओर थे और दादा एक ओर थे, तो भी (खॉसता है) इस युद्धमे दादाकी जीत हुई! सुना है मा?

सत्य०—सुना है बेटा!

विचित्र०—दादाके बराबर वीर तीन लोकमे नही है। (खॉसी)

सत्यव०—तुझे दुलहिने पसद आईं?

विचित्र०—(सिर झुकाकर) नही मा।

सत्य०—क्यों बेटा, क्या वे तुम्हे पसन्द नहीं?

विचित्र०—पसन्द क्यो नहीं; लेकिन (खॉसी) मेरी प्रकृति जैसे उनकी प्रकृतिसे मेल नही खाती। (खॉसी)

सत्य०—क्यो बेटा!

विचित्र०—वे बहुत चपल है, सदा हँसती बोलती रहती है। वे सजीः है और मै रोगी हूँ। मै उदास रहता हूँ—(खाँसी) मेरे मनमे तेज नही है।

सत्य०—क्यो वेटा!

विचित्र०—न जाने क्यो। मुझे जान पड़ता है, जैसे मैं न जाने कौन हूँ! (खाँसी) न जाने कहाँसे आया हूँ! पृथ्वीके साथ जैसे मेल ही नही खाता (खाँसी), मै जीता हूँ, इसका अनुभव करनेकी शक्ति भी जैसे मुझमे नही है। कभी कभी मुझे सन्देह होता है कि मै जीता हूँ या मर गया। (खाँसी)। मा इन रानियोको मै प्यार न कर सकूँगा। लेकिन (खाँसी) उनको देखना अच्छा लगता है—कारण (खाँसी) वे सुन्दरी है। उनका गाना सुनना अच्छा मालूम पड़ता है, (खाँसी) कारण, उनकी आवाज मीठी है, सुरीली है। नही तो—

विचित्र०—वेटा विचित्रवीर्य, तुझे दुःख काहेका है? तू राजाका वेटा है—तुझे काहेकी कमी है? तेरा चेहरा उदास क्यो रहता है?

विचित्र०—मुझे कोई कमी नही है, यही तो सबसे बढ़कर दुःख है मा। अगर मैं किसी अभावका अनुभव करता, तो जान पड़ता है, उसे पूर्ण करके सुख पाता। मै राजपुत्र हूँ। मुझे कुछ नहीं करना पड़ता। मेरे लिए जो कुछ करना है—उसे और लोग कर दिया करते है। मै सभीके स्नेहका पात्र एक खिलौना हूँ! मैं जैसे खिलौना हूँ—जीवित मनुष्य नहीं। इसीसे शायद मेरा जीवन महाशून्य है, महा अवसाद है। जाऊँ, देखूँ, दादा कहाँ है। (प्रस्थान)

सत्य०—कैसा आश्चर्य है! व्याहके बादसे तो लडका जैसे और भी शिथिल—और भी निर्जीव—हो गया है।

(सिर झुकाकर सोचते सोचते प्रस्थान)

[चिन्तित भावसे भीष्मका प्रवेश]

भीष्म—उसमे अब कितना परिवर्तन हो गया है ! उसकी दृष्टि, उसकी वाणी, उसका रूप—जैसे सभी कुछ बदलसा गया है ! ओह, मेरी युवावस्थाके वे उन्मत्त दिवस—नही, नही देवव्रत ! अपने मनको सबल बनाओ । उस दुनियासे अब तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही रहा। हृदय ! चंचल मत हो, तुम मुझे परास्त न कर सकोगे ।—हॉ, मै सोचता हूॅ, मनुष्यका हृदय इतना दुर्बल क्यो है ?

[अम्बाका प्रवेश]

भीष्म—(चौककर) तुम—तुम कौन हो ?

अम्बा—ओह, मुझे अब पहिचान भी नही सकते ! मेरे मुॅहकी तरफ देखो—कुछ याद आता है ! देवव्रत, तुम्ही एक दिन मेरे उपासक थे, और अब तुम मुझे पहिचान भी नही सकते !

भीष्म—(सिर झुकाकर) पहिचानता हूॅ देवी !

अम्बा—पहिचानते हो ? वे सब बीती बाते भी तो तुम्हे याद है न ? वह एक वसन्तकी प्रभात-वेलामे—

भीष्म—क्षमा करो देवी, उन बीती हुई बातोको याद करनेसे क्या मतलब । आज तुम्हारे और मेरे बीच एक अपार सागर लहरे मार रहा है।

अम्बा—जानती हूॅ युवराज, मै तुम्हारे पास प्रेमकी भीख मॉगने नही आई हूॅ । तुम मुझे मेरे पिताके यहॉसे बलपूर्वक हर लाये हो, मै स्वय नही आई । यह तुमने सच कहा कि “ मेरे और तुम्हारे बीच एक अपार सागर लहरे मार रहा है । ” या इससे भी अधिक यह कहा जाय तो भी ठीक है कि तुम और मै दोनो एक ही मनुष्य-लोकमे निवास नहीं करते। तुम अगर मनुष्यलोकके निवासी हो युवराज, तो

मै——अगर स्वर्ग न पाऊँ, न सही, नरकको जाऊँगी, पर इस मनुष्य-लोकको लात मार दूँगी।

भीष्म——क्यो देवी ?

अम्बा——इसे जाने दो।——अब मै तुमसे यह पूछती हूँ कि तुम मुझे यहाँ बलपूर्वक छीनकर क्यो ले आये हो ?

भीष्म——स्वयंवर सभाकी गडबड और कोलाहलमे मै तुमको पहचान नहीं सका।

अम्बा——कोलाहलमे पहचान नही सके ?——मिथ्यावादी——ठग, मुझे छोड दो।

भीष्म——आज्ञा दो देवी, मै तुमको तुम्हारे पिताके घर छोड़ आऊँगा।

अंबा——नेक——बडे ही नेक हो तुम। मगर राजकुमार होकर इतना परिश्रम तुम क्यो करोगे ? जरूरत नहीं। पिताके घर नहीं जाऊँगी। अब मै अपने पतिके पास जाऊँगी, मुझे छोड दो।

भीष्म——पतिके पास ! देवि, तुम्हारा पति कौन है ?

अंबा——सौभराज शाल्व।

भीष्म——शाल्व तुम्हारा पति है ? सर्वनाश ! तुम्हारा ब्याह तो उसके साथ नहीं हुआ ?

अंबा——हो चाहे न हो——इससे तुम्हे क्या हस्तिनापुरके युवराज ? हो चाहे न हो, अपने हृदयमे मैने उनको अपना पति मान लिया है। स्त्री सियारके समान दुष्ट धूर्त नहीं होती। वह हवाकी तरह अस्थिर चचल नहीं होती और पुरुषकी तरह वञ्चक नहीं होती। स्त्री जिसे एक बार हृदयसे अपना पति मान लेती है, वही भाग्यशाली मरणपर्यन्त उसका पति है।

भीष्म—शाल्वको तुम चाहती हो ?

अंबा—क्यों न चाहूँगी ? तुम क्या समझते हो युवराज कि इस पृथ्वीपर चाहनेके योग्य—प्रेमपात्र—एक तुम ही हो ? तुम क्या समझते हो कि हरएक घरमें स्त्रियाँ फूल-चन्दनसे तुम्हारी ही पूजा किया करती हैं ?—हाँ, मैं शाल्वसे विवाह करूँगी।

भीष्म—सावधान देवी, शाल्व नीच और लंपट है।

अंबा—सावधान युवराज, शाल्व मेरे पति हैं।

भीष्म—यह अपने हाथों अपनी हत्या करना है।

अंबा—तो इसमें तुम्हारा क्या ?

भीष्म—मेरा क्या देवी ? मैं अगर रोक सकता हूँ, तो क्या तुम्हारी इस आत्महत्याको न रोकूँगा ? देवि, तुम और किसीको अपना पति पसंद कर लो। आत्महत्या मत करो।

अंबा—तुम्हारी भी बड़ी हिम्मत है! तुमसे यह उपदेश कौन सुनना चाहता है! मुझे छोड़ दो।

भीष्म—आत्महत्या न करना देवी।

अंबा—मुझे छोड़ दो।

भीष्म—यह मुझसे न हो सकेगा। क्षमा करना बहन, मैं तुमको इतना चाहता हूँ कि तुम्हारी यह आत्महत्या मुझसे न देखी जायगी।

अंबा—तुम चाहो या न चाहो, उससे किसका बनता-बिगड़ता है ? अब मेरे ऊपर तुम्हारा कुछ अधिकार नहीं है। ब्रह्मचारी, मुझे छोड़ दो। मैं कसम खाती हूँ—जीवन और मरणमें सदा शाल्व ही मेरे पति हैं।—छोड़ दो राजदस्यु।

भीष्म—तथास्तु बहन । द्वार खुला है । देवि तुम अपने पतिके पास जाओ । आशीर्वाद देता हूँ, तुम यशस्विनी होओ और ब्याहसे सुख पाओ !

अवा—तुम्हारा यह आशीर्वाद कौन चाहता है युवराज ? मेरे जानेकी तैयारी कर दो, जिससे मै इस हस्तिनापुरकी जहरीली हवा छोड़कर चली जाऊ ।

भीष्म—तथास्तु । तैयार हो जाओ । मै तैयारी करता हूँ ।

(अम्बा निष्फल क्रोधसे अपने होठ चबाती हुई जाती है)

भीष्म—प्रिय बहन, तुम क्या जानो कि मेरे हृदयके भीतर अब तक प्रवृत्तियोका कैसा युद्ध हो रहा था ! सच्ची वीरता यही है । बाहु-बलसे जय प्राप्त करना तुच्छ बात है—वह केवल पशु-शक्तिकी साक्षी देता है । मनके मैदानमे खडे होकर, अपनी प्रवृत्तिके साथ युद्ध करना, उसे हराना, मनुष्यकी यथार्थ शूरताका काम है ।

[माधवका प्रवेश]

माधव—देवव्रत !

भीष्म—क्यो चाचा !

माधव—विचित्रवीर्य बहुत रो रहा है । तुम जल्द चलो ।

भीष्म—रोता है ? क्यो !

माधव—माल्म नहीं ।

भीष्म—मै जाता हूँ । उसे यही लिये आता हूँ । तुम यही ठहरे चाचा । कुछ कहना है । (प्रस्थान)

माधव—सब कुछ जैसे बिगडता ही चला जा रहा है ।

[सत्यवतीका प्रवेश]

सत्य०—कौन ?—माधव ?

माधव—कौन ?—महारानी ?

सत्य—देवव्रत कहाँ है ?

माधव—उन्हे खोजनेकी दरकार क्या है रानीसाहब ?

सत्य०—उससे जाकर कहो, मे जरा उससे मिलना चाहती हूँ।

माधव—क्यों ?

सत्य०—मै उससे, और तुमसे भी, पूछना चाहती हूँ कि मै क्या इस साम्राज्यकी कोई भी नहीं हूँ, राजपरिवारकी कोई भी नही हूँ, विचित्रवीर्यकी कोई भी नही हूँ ?

माधव—यह किसने कहा ?

सत्य०—कहनेका प्रयोजन नही। कामोसे तो यही देख पड़ता है।

माधव—किस कामसे रानीसाहब ?

सत्य०—यही विचित्रवीर्यका ब्याह ही ले लो। काशीराजकी कन्याओंको बलपूर्वक हर लाकर तुम दोनोने बालक विचित्रवीर्यके साथ उनका ब्याह कर दिया—मुझसे पूछा तक नही ! जैसे—

(गला रुँध जाता है)

माधव—रानीसाहब, बालकको यक्ष्मा-रोग हो गया है। वैद्यने कहा था कि वह जितना ही प्रसन्न रहेगा, उसके शरीरके और मनके लिए उतना ही लाभ होगा।

सत्य०—फिर—

माधव—इसी लिए हम दोनोने इन सुन्दरी हँसमुखी आनन्दमयी बालिकाओंको लाकर उसके साथ ब्याह दिया है।

सत्य०—इसके लिए मुझसे पूछ भी तो सकते थे !—क्यो, चुप क्यो हो गये ?

माधव—इसका उत्तर रानीको पसंद न आवेगा।

सत्य०—तो भी मै सुनना चाहती हूँ।

माधव—रानीने एक पुत्रको मार डाला है। अब हम लोग दूस पुत्रकी हत्या नही करने देगे।

सत्य०—सावधान ब्राह्मण!

माधव—ऑखे किसको दिखाती हो धीवरकी बेटी!

सत्य०—इतनी मजाल! सिपाहियो, इसे बॉध लो।

(सिपाही माधवको बॉध लेती हैं।)

सत्य०—कैदखानेमे ले जाओ। इस ब्राह्मणको सियारों औ कुत्तोसे नुचवाऊॅगी। फिर जो होना होगा सो होगा।

[भीष्मका फिर प्रवेश]

भीष्म—घरमे इतना गुल-गपाडा काहेका है? (माधवको देखक और फिर रानीकी ओर देखकर) ओ! समझ गया।—बन्धन खोल दो सिपाहियो!

सत्य०—(सिपाहियोसे) खबरदार!

भीष्म—खोल दो! (सिपाही बन्धन खोल देते हैं।)

सत्य०—देवव्रत! (भीष्म उधर न देखकर चले जाते हैं।)

माधव—रानीसाहब, क्या आज्ञा होती है? (व्यगके भावसे घुटं टेककर) त्वामभिवादये (तुमको प्रणाम करता हूँ) (उठकर प्रस्थान

सत्य०—पृथ्वी, पैरोके नीचेसे निकल जा!—और—और लज्ज तथा घृणाके मारे, गलेमे इस अनादरकी रस्सीका फंदा लगाकर, महाशून्यमे लटक जाऊँ। अग्निका प्रवाह जैसे मेरी नस-नसमे दौड रहा है! रोम-रोमसे चिनगारियॉ निकल रही है! मै जैसे जली जा रही हूँ। यह आग मुझे जलाकर भस्म क्यो नही कर देती!

[विचित्रवीर्यका प्रवेश]

विचित्र०—मा मा !

सत्य०—बेटा—नही, मै तेरी कोई नही हूँ। बालक विचित्र-वीर्य, मै अब तेरी मा नही हूँ। मै काली नागिन हूँ, जिसका जहरीला दॉत उखड गया है। मै पुराने सूखे पेडका ठूँठ हूँ, जो फिर नव पल्लवो और फूलोसे शोभित नही हो सकता। तू राजपुत्र है, और मै भिखारिन हूँ। जैसे मै अब इस राज्यकी कोई नही हूँ, बालककी मा भी नही हूँ। जैसे—जैसे मै रोगीके वमनको खानेवाली राहकी कुतिया हूँ। मै तेरी मा नही हूँ। भीष्म तेरा भाई है। मै तेरी कोई नही हूँ!—यह क्या, यह क्या बेटा, तेरे लाल लाल गालोपर ये दो मोतियोके समान ऑसू क्यो ढुलक पडे ! क्या हुआ बेटा ?

विचित्र०—मै तुम्हारा कोई नही हूँ ?

सत्य०—कौन कहता है बेटा ?

विचित्र०—तुम्ही तो कहती हो।

सत्य०—ना ना, मैने झूठ कहा। सब झूठ है। तू मेरा सर्वस्व है। इस ससारमे मेरा कौन है! दो ऑखे थी—एक ऑख फूट गई, दूसरी ऑख—बेटा, तू है। तू मेरी ऑखोकी ज्योति है, मेरे शरीरका प्राण है, मेरी भूखका आहार है, मेरी प्यासका पानी है,।—आ बेटा, मेरी गोदमे आ। मै पापिनी हूँ, तो भी मा हूँ। मै अपमानित, दलित, विश्वकी त्यागी हुई हूँ तो भी मा हूँ। मैने तुझे गर्भमे धारण किया है, उसे नही किया! आ बेटा, गोदमे आ—अपना सब अपमान भूल जाऊँ मेरे प्यारे पुत्र, मेरे सर्वस्व, आ। (विचित्रवीर्यको छातीसे लगा लेती है।)

विचित्र०—भीतर चलो मा, मै तुम्हारी गोदमे सिर रखकर सोऊँगा।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सौभराज शाल्वका प्रमोद-भवन

समय—सन्ध्या

[शाल्व और उसके मुसाहब बैठे हैं । सामने गान हो रहा है]

गजल

वहा दे यह, नाव साधकी तू, वढावमें क्यों, दहल रहा है।
चढा दे वस पाल, और वह चल, गँवार नाहक मचल रहा है॥
अजव तमाशा है, देख चलकर, उमंग जो हो तो फिर हो ऐसी।
उठा है तूफान और आँधी, नदीका जल भी उछल रहा है॥
वृथा है सव युक्ति और चिन्ता, पड़ा भी रहने दे दुःख पीछे।
वहेंगे चिल्लायँगे हँसेंगे, इसीमें अव जी वहल रहा है॥
अवश्य फिरना ही होगा रूखे, कठिन किनारेपै, तू समझ ले।
हिसाव करना, ही होगा लेना, औ' देना सवसे जो चल रहा है॥
जो नावको डूवना है डूवेगी, हमको मरना है तो मरेंगे।
मरेंगे गोतेमें गँदला पानी, जरासा पीकर, जो खौल रहा है॥

[अम्वाका प्रवेश]

१ मुसा०—यह और कौन आई !

२ मुसा०—सच तो है, यह और कौन आई !

शाल्व—रमणी, तुम कौन हो ?

अम्वा०—मैं काशीराजकी कन्या हूँ ।

शाल्व—ओहो पहचान गया—अम्वा !—वडा आश्चर्य है ! यहाँ किस मतलवसे आई हो ? चुप क्यो हो रही ?

अम्वा—काशीराजकी कन्या आज शाल्वके द्वारपाल अकेली उपस्थित है । तो भी क्या राजेन्द्र, उसे अपनी प्रार्थना मुँहसे कहनी होगी ।

शाल्व—सचमुच आश्चर्यकी बात है ! सुन्दरी, तुम्हारी बाते तो मुझे उत्तरोत्तर विस्मयमे डाल रही है !

अंबा—याद है महाराज, मै स्वयंवरा होनेपर सभामे तुम्हारे गलेमे जयमाला डालने गई थी ? इस समय अपने परिणीत पतिके पास आई हूँ।

शाल्व—सो क्या, मै तुम्हारा पति हूँ ?

अंबा—जिस घडी मैने तुम्हे वरमाला अर्पण की, उसी घडीसे तुम मेरे पति हो गये महाराज। इसीसे मै—

शाल्व—विचित्र स्त्री, तो क्या मै समझूँ कि तुम मुझसे पत्नीत्वकी भिक्षा माँगती हो ?

अंबा—यह पत्नीत्वकी भिक्षा माँगना नही है, किन्तु पतित्वका दान है। जब तुम स्वयंवरकी सभामे गये थे महाराज, तब मुझसे पत्नीत्वकी भिक्षा माँगने गये थे। वह भिक्षा मैने तुमको दी भी थी। परन्तु उसके बाद ही शक्तिके बलसे भीष्म वीर इन दुर्बल हाथोसे वह भिक्षा छीन ले गये। अब मै उस भिक्षाको फिर तुम्हारे भिक्षाके पात्रमे फेर लाई हूँ।

शाल्व—आश्चर्य है!—बडा साहस है !—लौट जा नारी, मै तेरा यह दान नही चाहता।

अंबा—नही स्वामी, मुझे अपनी भिक्षा लौटानेका अधिकार नही है। राजन्, जो भिक्षा दे डाली सो दे डाली। स्त्री जो देती है, वह एक दम दे डालती है—जन्म-भरके लिए दे डालती है। इतने सहजमे—अनायास—अकातरभावसे—जगतमे इतना बडा दान और कोई नही करता। एक हृदय-रत्न, एक जीवन, एक बडी भारी आशा, एक बड़ा भारी भविष्य, सुख, दुःख, स्वच्छन्दता, स्वाधीनता-ज्ञान, धर्म-कर्म-शान्ति-मोक्ष, जन्म-जन्मान्तर—सब कुछ—एक दिनमे—एक घडीमें

उसको दे डालना, जिसको कभी पहले देखा तक नहीं, जिसका नाम तक पहले कभी नहीं सुना, जिसका पहलेका हाल कुछ नहीं मालूम, जिसके बारेमे यह भी नही मालूम कि वह स्वर्गकी देवता है या नरकका कीडा! ऐसे पुरुपको सर्वस्व दे डालना—इतना बड़ा दान कर देना—स्त्रीके सिवा इस संसारमे और किसीसे नही हो सकता। महाराज, मै फॉद पडी हूँ, मालूम नही—अमृतकी नदीमे या विपके कुंडमे, स्नेहके आलिंगनमे या सर्पके दंशनमे! परन्तु फाँद पड़ी सो फाँद पडी! मेरे नीचे गिरनेको अब कोई रोक नही सकता! किसीमें इतनी शक्ति नही।

१ मुसा०—महाराज, यह औरत पागल हो गई है।

अंवा—पागल नही हूँ महाराज, मै तुम्हारे आश्रयकी भिक्षा माँगने नही आई हूँ। सडे हुए मुर्दोके कुण्डमे आत्म-विसर्जन करने आई थी।—परन्तु क्यो आई थी?—यह नही कहूँगी। यह प्रकाश करना असह्य हो रहा है।—आ, मेरे जीवनमे प्रलयका अन्धकार छा जा, उस घने अंधकारमे मै भागकर छिप जाऊँ! यह भ्रमणशील लक्ष्यहीन जीता हुआ नरक-कुण्ड है।—यह नराधम है! यह नरकका कीडा है! इसे मै अपना पति बनाने आई थी! हाय, फाँसी लगानेको रस्सी भी नही मिली!

२ मुसा०—महाराज, जान पड़ता है, यह औरत आपको गालियाँ दे रही है।

अंवा—तो फिर यहींपर जीवन-नाटकका पर्दा गिर जाय।

(कमरसे कटार निकलना चाहती है।)

२ मुसा०—निकाल दो।

शाल्व—भीष्मकी इस रखेलीको दूर कर दो।

अंबा—(कटार निकालकर) तो अब मैं नहीं मरूँगी—तू मर।
(बिजलीकी तरह तेजीसे जाकर शाल्वकी छातीमें कटार भोंक देती है।)

सब मुसा०—यह क्या! यह क्या! (शाल्वको घेर लेते हैं।)

अम्बा—मैं नरहत्या करनेवाली, पिशाची, कुलटा, सब कुछ हूँ, केवल भीष्मकी रखेली नहीं हूँ। (अट्टहास करके प्रस्थान)

[आकाशमें शिव, पार्वती और व्यासका प्रवेश]

व्यास—विश्वम्भर, मेरी समझमें नहीं आता। आप क्या कह रहे हैं, कि मेरे पिता पराशर हैं और माता सत्यवती है?—पिता महर्षि हैं और माता धीवरकी कन्या है?

शिव—लज्जासे सिर क्यों झुका लिया ऋषिवर? पराशर ऋषि अवश्य थे, तो भी मनुष्य—दुर्बल मनुष्य-मात्र थे! तामस मुहूर्त्तमें अगर उनका पदस्खलन हो गया था, तो उन्होंने युगव्यापी तप करके और शुष्क अध्ययन करके उसका प्रायश्चित्त भी कर डाला!—जाओ व्यास, अगर तुम खुद कामको जीत सको, तो अपने पिताकी निन्दा करना। और यदि काया और मनसे—बाहर और भीतर—कामदेवको जीत सको, तो तुम महादेव हो।

व्यास—क्या विश्व-भरमें किसीने भी कामदेवको नहीं जीता?

शिव—एक आदमीने जीता है।

व्यास—उसका नाम?

शिव—भीष्म।

व्यास—देवव्रत भीष्म?

शिव—हाँ, एक देवव्रत भीष्म ही इस जगत्‌में कामदेवको जीतनेवाले हैं। इसीसे उनका भीष्म नाम पड़ा है। कामदेवको जीत लिया है—इसीसे जगत्‌में भीष्म अजेय हैं।

व्यास—भीष्म कैसे अजेय है ?

शिव—उन्होंने अपने शरीर और मनको कर्त्तव्यके चरणोमे अर्प कर दिया है। व्यास, तुमने ही उन्हे कर्त्तव्यके महाव्रतकी दीक्षा द है। तुम्ही उनके गुरु हो।

व्यास—समझ गया भगवन्!—अच्छा चरणोमे प्रणाम करता हूँ

(प्रणाम और प्रस्थान)

शिव—कैसा आश्चर्य है।

पार्वती—ऐसा क्या आश्चर्य है प्राणनाथ!

शिव—प्रियतमे, मै जानता था कि इस ब्रह्माण्ड-भरमे अकेला ही कामदेवको जीतनेवाला हूँ, लेकिन देखता हूँ, पृथ्वीपर मेरी बरा बरीका दावा करनेवाला एक महापुरुष और भी है।

[गगाका प्रवेश करके शिव और पार्वतीको प्रणाम करना]

शिव—गंगा, क्या खबर है ?

पार्वती—बहन, कुशल तो है ?

गगा—सब कुशल है देवी,—महादेव, तुम्हारे दो पत्नी हैं— एक पत्नी तुम्हारे आधे अगमे निवास करती है और दूसरी पत्नी, प्रभो एक दिन तुम्हारे सिरपर थी। आज वही तुम्हारी पत्नी तुम्हारे चर णोके तले पाप-तापसे तपी हुई पृथ्वीकी छातीपर है। मनुष्योके शोकरे मै दिन-रात रोती हूँ, अब मुझसे यह नही सहा जाता।

शिव—किस लिए गंगा ?

गंगा—अबला स्त्रियाँ पुरुषोके द्वारा प्रतिदिन ही सताई जाती हैं— वह देखो महादेव, काशीराजकी कन्या अम्बा उपेक्षिता होकर द्वार-द्वार मारी मारी फिरती है। उसका पिता अपनी सन्तानको आश्रय नहीं दे

चाहता। इसीसे उन्मादिनी अम्बा आज भीष्मके प्रेमके द्वारपर भिक्षुकी-के रूपमे उपस्थित है।—नाथ, इस मूढ़ देवव्रतको सत्यके बन्धनसे मुक्त कर दो।

शिव—नही गंगा, संसारसे इस महामहिमाको मै नही उठाऊँगा। पृथ्वी शून्य हो जायगी।

गगा—तो फिर स्त्री (अंबा) के हृदयमे ही शान्ति दो।

शिव—गगा, जिसे जो मिलना चाहिए, उसे मैं वही दूँगा। तुम लौट जाओ देवी, अपने कर्त्तव्यका पालन करो। (सबका प्रस्थान)

(पर्दा गिरता है।)



चौथा अङ्क



पहला दृश्य

—:o:—

स्थान—परशुरामके आश्रमके आगेका आँगन

समय—प्रात:काल

[परशुराम वेदीपर बैठे हैं। सामने अम्बा खडी है।]

अम्बा—मैं और कुछ नही चाहती देव, मै केवल भीष्मकी प्रतिज्ञाको तोडना चाहती हूँ। उनके जीवनभरकी साधनाको निष्फल करूँगी, उनका व्रत नष्ट करूँगी, उनके घमंडको चूर करूँगी। उनके इस बनावटी वेषको छिन्न-भिन्न करूँगी और सारी पृथ्वीको उनका नंगारूप दिखाऊँगी। दिखाऊँगी कि देवव्रत एक बना हुआ सन्यासी है।

परशु०—प्रयोजन ?

अम्बा—इस पृथ्वीतलपर नारीकी महिमाकी फिरसे प्रतिष्ठा हो, सिंहासनपर नारीकी निर्वासित क्षमता फिरसे स्थापित हो, पुरुष स्त्रीको उसका न्यायसे प्राप्य अधिकार फेर दे। बस, यही प्रयोजन है।

परशु०—सो किस तरह ?

अम्बा—चराचर जगत् यह जान ले कि इस विश्वमें पुरुष प्रभु नही है, स्त्री ही प्रभु है। जिस कामदेवको भस्म करनेके कारण भगवान् शंकर महादेव कहाते है; उसी कामदेवके बाण आज इस तुच्छ देवव्रतकी प्रतिज्ञाको नहीं डिगा सकते! भगवन्, प्रकृतिके इस बडे-

अनियमको दूर करो, स्त्री-जातिके सनातन अधिकारकी रक्षा करो, तुच्छ पुरुषके इस घमडको चूर करो !—बस, इतना ही चाहती हूँ ।

परशु०—वह देवव्रत आ रहा है । तुम यहाँसे हट जाओ ।

(अम्बाका प्रस्थान)

परशु०—यह क्या सच है ? यह क्या मनुष्यसे संभव है ? अच्छा, परीक्षा करूँगा कि देवव्रतका यह व्रत कितना दृढ है ।

[भीष्मका प्रवेश]

भीष्म—दास चरणोमे प्रणाम करता है ।　　(प्रणाम करना)

परशु०—जय हो देवव्रत ।

भीष्म—गुरुदेव, आपने मुझे याद किया है ?

परशु०—हॉ ; कितने ही दिनोसे तुमको देखा न था । तुम बहुत ही शिथिल शीर्ण हो गये हो । तुम्हारा वह तेजस्वी दर्पपूर्ण सौम्य मुखमण्डल आज बहुत ही शान्त हो गया है । वह तीक्ष्ण दृष्टि आज झुकी हुई, स्नेहमयी, मलिन और अश्रुपूर्ण देख पडती है । मत्थेपर झुर्रियाँ पड गई हैं । ऑखोके नीचे स्याही जम गई है । वत्स, जैसे तुम अपने मनमे कोई दुश्चिन्ता—कोई गहरी निराशा—धारण किये हुए हो !—कहो देवव्रत, क्या हुआ है ?

भीष्म—गुरुदेव, तब मै बालक था, अब अधेड होनेको आया हूँ । दिन दिन बुढ़ापा सारे शरीरमे अपना प्रभाव फैलाता जा रहा है ।

परशु०—शरीरमे वह तेज भी नही है ।

भीष्म—ना, वह तेज नहीं है ।

परशु०—वह देवव्रत, और यह देवव्रत !

भीष्म—दासको आज किस लिए स्मरण किया है ?

परशु०—याद है, काशीराजके यहाँ जो स्वयंवर हुआ था उसमेंसे तुम काशीराजकी कन्याओंको हर लाये थे।

भीष्म—याद है गुरुदेव!

परशु०—काशीराजकी छोटी दोनो कन्याये हस्तिनापुरके राजा विचित्रवीर्यकी रानी है। लेकिन बडी अंवा अभी तक अविवाहिता है।

भीष्म—यह समाचार सुन चुका हूँ।

परशु०—उसी अभागिनने आज मेरा आश्रय ग्रहण किया है।

भीष्म—समझा गुरुदेव।

परशु०—देवव्रत, तुम उसके साथ व्याह कर लो।

भीष्म—सो कैसे गुरुदेव!

परशु०—तुमने उस राजकुमारीको छुआ है—उसका हाथ पकडा है।

भीष्म—तो भी उसके साथ मेरा व्याह असम्भव है।

परशु०—असम्भव है!—तुम उसे प्यार नही करते?

भीष्म—इतना प्यार करता हूँ कि उसे छूते डर मालूम होता है—कही असावधानताके वश होकर सौन्दर्यके उस तपोवनको कलुषित न कर डालूँ।

परशु०—बडे आश्चर्यकी बात है!—देवव्रत, व्याह क्या पाप है?

भीष्म—पाप नही है। विवाह पुण्यका राज्य है। किन्तु, हाय, आज मै उस राज्यसे सदाके लिए निकाला हुआ हूँ।

परशु०—क्यो?

भीष्म—मैने सदाके लिए ब्रह्मचर्य-व्रत ले लिया है।

परशु०—किसकी आज्ञासे ?

भीष्म—ईश्वरकी।

परशु०—ईश्वरकी ? ईश्वर कहाँ है ?

भीष्म—अपने ही हृदयमे गुरुदेव।

परशु०—यह तुमसे किसने कहा ?

भीष्म—महर्षि व्यासने।

परशु०—वह आज्ञा तुमने सुनी है ?

भीष्म—सुनी है गुरुदेव। जगव्यापी स्वार्थके युद्धमे, संसारके कोलाहलमे, उस आज्ञाको निरन्तर नही सुन पाता। लेकिन कभी कभी वह घड़ी भी आती है, जब उसके गूढ़ स्वरको, उसके गभीर आह्वानको, उसके मधुर संगीतको सुन पाता हूँ।

परशु०—तुमने वह आज्ञा सुनी है ?

भीष्म—सुनी है।

परशु०—झूठ बात। मै तुम्हारा गुरु हूँ; मै आज्ञा करता हूँ—तुम अंबाके साथ ब्याह करो।

भीष्म—यह असभव है गुरुदेव !

परशु०—क्या कहा तुमने ?

भीष्म—असंभव है !

परशु०—असंभव है ?

भीष्म—क्षमा कीजिएगा; मै प्रतिज्ञाके बन्धनमे बँधा हुआ हूँ—मैं जीवन-भरके लिए ब्रह्मचारी हूँ।

परशु०—तो क्या मै यह समझ लूँ कि तुम अस्वीकार करते हो ?

भीष्म—क्या करूँ गुरुदेव !—अब व्याह करनेका मुझे अधिकार ही नहीं है—मैं सत्यके वचनमें बँधा हुआ हूँ।

परशु०—उस वचनको तोड़ डालो।

भीष्म—क्षमा कीजिए।

परशु०—यही तुम्हारी गुरुभक्ति है !—तुम मेरे शिष्य हो !

भीष्म—आपका शिष्य अवश्य हूँ—लेकिन मैं भीष्म हूँ !

परशु०—परशुरामकी आज्ञा है—अपना व्याह करो।

भीष्म—तो फिर मुझे मृत्युका दण्ड दीजिए, मैं यह आज्ञा न मानूँगा।

परशु०—आज्ञा देता हूँ भीष्म, मैं भगवान् हूँ, तुम उसके साथ अपना व्याह करो।

भीष्म—गुरुदेव, पिताने मृत्युके समय मेरा हाथ पकड़कर मुझसे यह भिक्षा माँगी थी कि "तुम व्याह करना।" और मैं यह मानता हूँ कि पिता ही जगत्‌में प्रत्यक्ष ईश्वर है। लेकिन तो भी मैंने उनका कहा नहीं माना, पिताकी आज्ञाके भी ऊपर अपने कर्त्तव्यको स्थान दिया।—देव, मैं चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करता हूँ, मुझे क्षमा कीजिए।

(प्रणाम करना चाहते हैं।)

परशु०—तो तुम अस्वीकार करते हो ?

भीष्म—भगवन्, क्या आप जानते हैं कि जगत्‌में मेरा नाम भीष्म क्यों पड़ा है ?—मैंने अपनी भोग-वासनाको तृप्त करके यह नाम नहीं पाया है। गुरुदेव, यह ब्रह्मचर्य व्रत—यह कठोर व्रत फूलोंकी कोमल सेज नहीं है। मेरा जीवन भोग-सुखसे खाली है। मेरा सारा जीवन स्त्रीके प्रेमसे वंचित है। मेरा सारा जीवन सन्तानके सुखसे शून्य है। जो पुत्र संसारमें सब सुखोंका मूलाधार समझा जाता

है, जिस पुत्रका मुख देखकर मनुष्य अनायास ही ससारके सब दु:खोको, रोगकी यन्त्रणाको, दारिद्रके कोडेकी चोटको, गुलामीकी ताडनाको, दिनभरकी उदासीको, भूल जाता है, जो पुत्र परदेशमे निराशाकी शून्यता-को पूर्ण करता है—मरनेपर परलोकके गहरे अधकारको प्रकाशित करता है, उसी पुत्रका मुख देखनेके सुखसे मै जन्मभरके लिए वचित हूँ गुरुदेव !—यह क्या कोई बडा भारी सुख है, जिसके लिए मै गुरुकी बातको टालता हूँ ?

परशु०—शिष्य, यह व्याह करके तुम वही सुख पाओगे ।

भीष्म—क्षमा करो गुरुदेव, मै ब्रह्मचारी हूँ ।

परशु०—भीष्म, मै यह अन्तिम बार कहता हूँ।—व्याह या मौत, जो चाहे सो पसद कर लो ।

भीष्म—अगर जरूरत पडेगी तो मै मौतको ही पसद करूँगा ।

परशु०—अच्छी बात है। अच्छा तो फिर परसो सवेरे कुरुक्षेत्रमे सशस्त्र परशुरामसे तुम्हारी भेट होगी । शस्त्र लेकर आना ।

भीष्म—शस्त्र लेकर क्यो आऊँ ?

परशु०—देवव्रत, मुझे जान पड़ता है तुम्हारा वीरताका घमड बहुत बढ गया है; इससे तुम परशुरामकी आज्ञाको तुच्छ मानकर अस्वीकार करते हो। मै तुम्हारे उस घमडको मिटा दूँगा ।

भीष्म—मेरी इतनी मजाल नहीं है कि मै भार्गवके साथ युद्ध करूँ।

परशु०—तुम डरते हो ?

भीष्म—भय किसे कहते है, सो तो मै जानता ही नही। तो भी मै गुरुके निकट बिना युद्धके ही अपनी हार स्वीकार करता हूँ ।

परशु०—तुम क्षत्रियके लड़के हो ? भीरु ! मै तुम्हे युद्धके लिए बुलाता हूँ ।

भीष्म—प्रार्थना करता हूँ—सावधान गुरुदेव, सोये हुए क्षत्रियके पराक्रमको जगाकर उत्तेजित मत कीजिए।

परशु०—मै इक्कीस वार इस भारत-भूमिको क्षत्रियोसे शून्य कर चुका हूँ।

भीष्म—परन्तु उस समय भीष्म नही था।

परशु०—इतनी हिम्मत !

भीष्म—गुरुदेव, शिष्य चरणोमे प्रणाम करता है।

परशु०—शस्त्र लेकर परसो सवेरे कुरुक्षेत्रके मैदानमे युद्धके लिए आना।

भीष्म—अच्छी वात है। गुरुकी इस आज्ञाका पालन करूँगा। भीष्म चरणोमे प्रणाम करता है।

परशु०—जाओ देवव्रत, युद्धके लिए तैयार रहना।

भीष्म—मै तैयार रहूँगा। (प्रस्थान)

परशु०—आश्चर्य है! भीष्म सच्चा क्षत्रिय है! क्या यह भी सभव है! धन्य मेरे प्रिय शिष्य! ऐसा अटल अचल हिमालय भी नही होगा। सत्य, यह भी क्या सभव है! तुम्हारी प्रतिज्ञाकी परीक्षा करूँगा। देखूँगा यह तुम्हारी प्रतिज्ञा परशुकी तीक्ष्ण धारको सह सकती है या नहीं!

दूसरा दृश्य

स्थान—शयनगृह

समय—सन्ध्या

[विचित्रवीर्य लेटा हुआ है। सत्यवती पास वैठी है।]

सत्य०—दिन वीत गया। धीरे धीरे सव कुछ प्रकाशहीन मलिन होता चला आता है। सूर्य अस्त हो रहे है। मुझ अभागिनने एक पुत्र

तो खो ही दिया है, दूसरा भी मृत्युशय्यापर पडा सॉसे पूरी कर रहा है। मेरी ऑखोके आगे ही देखो धीरे धीरे उसके मुखमण्डलपर वह मृत्युकी कालिमा घनी होती आ रही है। मृत्युकी गति रोकनेकी शक्ति-मुझमे नहीं है।—विचित्रवीर्य हॅस रहा है। स्वप्न देख रहा है।

विचित्र०—(ऑखे खोलकर) मा—मा !

सत्य०—क्या है बेटा, क्या है ? चौक क्यो उठे ?

विचित्र०—मा, मै कहॉ हूॅ ? (खॉसी)

सत्य०—क्यों ! तुम अपने महलमे हो !

विचित्र०—ओः !—सबेरा है या सन्ध्या ?

सत्य०—सन्ध्या है।

विचित्र०—ओः—(फिर ऑखे मूॅद लेता है।)

सत्य०—कैसी तबियत है बेटा ?

विचित्र०—बहुत अच्छी है मा। (खाँसी)

सत्य०—सचमुच तबियत अच्छी है ?

विचित्र०—सचमुच तबियत अच्छी है।—दादा कहॉ है ?

सत्य०—बाहर है। बुलाऊॅ ?

विचित्र०—ना, अभी जरूरत नहीं है, पर मौतसे पहले उनसे एक बार मिलना चाहता हूॅ।

सत्य०—यह क्या कह रहे हो बेटा, ऐसी बात कोई कहता है !

विचित्र०—देखो भूलना नहीं। मेरे मरनेके पहले जरूर उनको बुला लेना।

सत्य०—मै उसे अभी बुलाये लेती हूॅ।

विचित्र०—ना, वे तो हरघड़ी मेरे पास बैठे रहते है। रात-भर वे पलक नहीं लगाते। कितनी ही बाते किया करते हैं। मा, ऐसा बड़ा भाई और किसीका भी न होगा। (खॉसी) जरासा जल दो मा।

(सत्यवती जल देती है।)

विचित्र०—वह देखो सूर्य अस्त हो गये! वह देखो मा (खाँसी)।

सत्य०—क्या बेटा!

विचित्र०—ये घर देखो। इनके ऊपर सूर्यकी अन्तिम सुनहली किरणे आकर पड रही है। कैसा सुन्दर दृश्य है!

सत्य०—बहुत ही सुन्दर दृश्य है!

विचित्र०—और मेरे शरीरपर भी जीवनकी अन्तिम किरणे आकर पड़ रही है! अच्छा मा, मनुष्य मरनेपर कहाँ जाता है?

सत्य०—ये बाते क्यो कर रहे हो बेटा?

विचित्र०—ना, यो ही पूछ रहा हूँ—अच्छा, यह आकाश इतना नीला क्यो है?

सत्य०—यह सब विधाताकी सृष्टि है। वे ही जानें।

विचित्र०—मुझे जान पड़ता है, मृत्युका ऐसा ही नीला रग है—मृत्यु ऐसी ही असीम है।—अच्छा मा, दादा देखनेसे तो ऐसे वीर नहीं जान पडते (खाँसी)—तकिया तो ठीक कर दो मा।

(सत्यवती तकिया ठीक कर देती है।)

विचित्र०—मुझे जान पड़ता है, जैसे स्नेहसे ही उनका सारा शरीर बनाया गया है। किन्तु वे बडे ही गभीर हैं—जैसे समुद्र। (खाँसी) क्यो मा?

सत्य०—मैं नहीं जानती बेटा।

विचित्र०—दादा अगर व्याह करते, तो जान पडता है, सुखी होते। दादाने व्याह क्यो नही किया मा?

सत्य०—ओ,—

विचित्र०—यह क्या ! फिर तुम हाथोसे अपना मुँह ढँक रही हो। रोओ नहीं मा। मै देखता हूँ, दादाके ब्याहकी बात चलते ही तुम रोती हो।—रोओ नहीं।

सत्य०—ना बेटा, लेकिन तू यह बात मत पूछ, और सब बाते पूछ—केवल—यही—बात मत पूछ।

विचित्र०—क्यो मा ? आज तो तुम्हे कहना ही पड़ेगा।—मै सुन लूँगा तब मरूँगा। (खाँसी) देखूँ, यहाँसे परलोक जाकर शायद वहाँसे तुम्हारे लिए और उनके लिए कोई शान्तिका समाचार भेज सकूँ—बोलो मा।

सत्य०—तुम्हारे दादा स्वर्गके देवता है, पृथ्वीपरके मनुष्य नही। उन्हे हम लोग ठीक ठीक नही पहचान सकते। वे इस स्थूल, कठिन, प्रकाश और अन्धकारसे मिले हुए स्वार्थ-राज्यके कोई नही है। जैसे न जाने कहाँसे यहाँ आये है। स्वार्थत्यागके महामन्त्रको मुखसे कहकर प्रचार करने नही आये हैं, अपने कार्योंसे उसका प्रचार करने आये है।

विचित्र०—कहो मा, और भी कहो। दादाकी बाते कहो। उनके जीवनका इतिहास अनेक बार मैने तुम्हारे मुखसे सुना है मा—(खाँसी) आज फिर कहो, मै सुनूँ। वे जैसे एक मायाकी कहानी है—जितना ही सुनता हूँ उतना ही और सुननेको जी चाहता है। (खाँसी) मा, जरासा पानी दो।

(सत्यवती जल देती है।)

सत्य०—बड़ा कष्ट हो रहा है ?

विचित्र०—ना, कुछ नही। वह चन्द्रमा निकल रहा है। कैसा सुन्दर है ! (चन्द्रमाकी ओर एकटक देखना)

सत्य०—और एक बार दवा पी लो बेटा।

विचित्र०—चुप रहो ! अद्भुत है ।

सत्य०—क्या अद्भुत है ?

विचित्र०—मा, जरा बहुओंको तो बुलाओ । उनका एक गाना सुननेको जी चाहता है (खाँसी)—उनकी बातचीत, उनका गाना सुनना मुझे बहुत पसंद है । वे मुझे बहुत प्यार करती है ।—लेकिन मै उन्हे सुखी नही कर सका । (खाँसी) जरा उन्हे बुलाओ तो मा।

सत्य०—अभी बुलाये देती हूँ । (सत्यवतीका प्रस्थान)

विचित्र०—गाना सुनते सुनते मरूँ। इस पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनीके प्रकाशमे, इस नील आकाशके नीचे, गाना सुनते सुनते मरूँ (खाँसी)।

[अम्बिका और अम्बालिकाका प्रवेश]

विचित्र०—अंबिका, अंबालिका, एक गाना तो गाओ । वही गाना, जो उस दिन सन्ध्याको गाया था ।

(अम्बिका और अम्बालिका गाती हैं)

गजल

असीम नीले गगनके ऊपर छिटक रही चाँदनी है छाई ।
भवनके भीतर पड़ा है फिर क्यों? चिराग फिर क्यों जलाए भाई।
न रखना अब और सिरपै घेरे, सनेह-बन्धनको तोड़ दे रे ।
झपटके झट दौड़ लीन हो अब, न रात पाएगे यों सुहाई ॥
ये तान आकुल उठी पपीहेकी, उसमें डूबे अकास धरती ।
थमा दे वीणाका शब्द, चुप हो, निकलके बाहर अब सुन ले भाई।
ये मौत माता ही प्यार करके, हृदयको आगे किये है आती ।
जो इस घड़ी मैं न मरने पाऊँ, तो मेरा मरना ही है भलाई ॥
समाप्त कर दी है धूलिक्रीड़ा, खरीदना बेचना भी मैंने ।
हिसाबसे लेन देन चुकता कर आया हूँ ठीक पाई पाई ।
बहुत थका आज हूँ मैं, इससे उठाके ले चल वहाँपे मुझको।
असीम उज्ज्वलमें मिल गया है असीम काला जहाँपे माई ॥

[भीष्म और माधवका प्रवेश]

(पीछे अलक्षित भावसे सत्यवती भी आती है।)

भीष्म—अब कैसे हो भैया? (नाडी देखकर) यह क्या!—यह तो बिल्कुल वर्फ है! सॉस ही नही चलती—

माधव—(भयके भावसे) ऐ! यह क्या हुआ देवव्रत!

भीष्म—(फिर परीक्षा करके) मृत्यु हो गई।

माधव—बेटा! प्राणाधिक! (विचित्रवीर्यके शरीरसे लिपट जाता है।)

सत्य०—बेटा! बेटा!— (मूर्छित होकर गिर पडती है।)

(अंबिका और अम्बालिका दोनो डरे और सहमे हुए भावसे परस्पर एक दूसरेकी ओर ताकती हैं। भीष्म द्वारपर खडे रहते हैं।)

तीसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुरके राजमहलका एक हिस्सा

समय—तीसरा प्रहर

(माधव और धीवर-राज)

माधव—उन्होने स्वयंवरकी सभासे तुमको उठा दिया?

धीवर०—हॉ उठा दिया।

माधव—अच्छी तरह याद है?

धीवर०—बहुत ही अच्छी तरह।

माधव—उसके बाद भीष्मके साथ राजाओका युद्ध हुआ?

धीवर०—हॉ हुआ।

माधव—तुमने भी युद्ध किया था?

धीवर०—हॉ किया था।

माधव—तुम किस ओर थे?

धीवर०—किसी ओर नही।

माधव—बीचमे थे ?

धीवर०—ठीक बीचमे भी नहीं ।

माधव—फिर ?

धीवर०—एक ओर—

माधव—तीर चलाया था ?

धीवर०—हाँ चलाया था ।

माधव—किसपर ?

धीवर०—सो तो नहीं मालूम ।

माधव—आँख मूँदकर चलाया था ?

धीवर०—हाँ ।

माधव—उसके बाद शायद तुम भागे ?

धीवर०—हाँ भागा ।

माधव—इतने दिन कहाँ थे ?

धीवर०—जगलमे ।

माधव—वहाँ क्या देखा ?

धीवर०—बाघ ।

माधव—पहले तो तुम कह चुके हो—रानी ।

धीवर०—हाँ, शायद कह तो चुका हूँ ।

माधव—फिर ?

धीवर०—फिर उसने मेरा पीछा किया ।

माधव—किसने ? बाघने या रानीने ?

धीवर०—सो कुछ ठीक समझमे नहीं आया ।

माधव—पीछा किया ?

धीवर०—हाँ पीछा किया ।

माधव—और तुम शायद एकदम जान लेकर भागे ।

धीवर०—हाँ मै भागा—जान लेकर भागा ।

माधव—वहाँसे भागकर एकदम यहाँ आये ?

धीवर०—एकदम यहाँ आया ।

माधव—तुम्हारा मत्री कहाँ है ?

धीवर०—मर गया ।

माधव—कैसे मरा ?

धीवर०—मेरे तीरसे ।

माधव—तुम्हारे तीरसे ?

धीवर०—बादको यही मालूम हुआ ।

माधव—ओ !—तुमने आँख मूँदकर जो तीर चलाया था, वह शायद मत्रीहीके लगा था ?

धीवर०—यही तो जान पड़ता है ।

माधव—तुम नही मरे ?

धीवर०—ना ।

माधव—जीते हो ?

धीवर०—जान तो पडता है, जीता हूँ ।

माधव—कहाँ हो ?

धीवर०—बीचमे ।

माधव—किसके बीचमे ?

धीवर०—एक ओर युद्ध और दूसरी ओर रानी है ।

माधव—रानी ? या बाघ ?

धीवर०—बाघ ।

माधव—जान पडता है, तुम पागल हो गये हो ?

धीवर०—जान तो पडता है, हो गया हूँ ।

माधव—अब क्या करोगे ?

धीवर०—यही तो सोच रहा हूँ ।

माधव—यहाँ रहोगे ?

धीवर०—वही सोचता हूँ ।

माधव—या घर लौट जाओगे ?

धीवर०—अरे बाबा !

माधव—तुम्हारी स्त्री देखनेमे कैसी है ?

धीवर०—बापरे बाप !

माधव—देखो धीवरराज, मैं तुम्हे एक सलाह देता हूँ ।

धीवर०—क्या ?

माधव—घर लौट जाओ ।

धीवर०—रानीके पास ?—बापरे !

माधव—देखो, स्त्री चाहे जैसी हो, उसके जैसा मतलबका आदमी और नहीं मिल सकता ।

धीवर०—सो कैसे !

माधव—देखो, महीना देकर आदमी रक्खो—देखोगे, जो रोटी पकाता है वह बरतन नही माँजता, जो बरतन माँजता है वह लड़कोंको खिला-पिलाकर पालता नहीं । लेकिन स्त्रीके द्वारा जूते सीनेसे लेकर दुर्गापाठ तक सब काम कराया जा सकता है । ऐसी स्त्रीको मत छोड़ो ।

धीवर०—बात तो सच है ।—ओ बाबा—(काँपता है ।)

माधव—क्या है ?

(धीवरराज नेपथ्यकी ओर उँगली उठाकर दिखाता है ।)

माधव—अच्छा हुआ, तुम्हारी रानी यहीं आ गई । लो, मैं सब झगड़ा मिटाये देता हूँ ।

[धीवरकी रानीका प्रवेश]

धी० रानी—ओरे कलमुँहे ! अन्तको दामादके घर आकर डेरा डाला है ! ओरे अभागे मर्द—

माधव—इतनी जल्दी—इतनी तेजी ठीक नही रानी साहबा ! सुनो, तुम्हारे ये शब्द अश्लील है।

धी० रानी—इसीसे क्या—

माधव—यह ठीक पतिभक्तिका लक्षण नही है।

धी० रानी—ऐसे ही पतिकी तो भक्ति की जाती होगी !

माधव—पति चाहे जैसा हो, वह पति है। इस जन्मने तो और दूसरा पति पानेका उपाय नही है। तब उसके साथ मेल करके ही रहना चाहिए। नही तो जीवन सदा अशान्तिसे बीतता है।

धी० रानी—बात तो सच है। अच्छा, अब आओ, घर चलो।

माधव—जाओ धीवरराज, तुम्हारी स्त्री अब बहुत ही नरम भाषामे तुमको बुला रही है।—जाओ।

धीवर०—यह अक्सर मेरा बडा अपमान करती है।

धी० रानी—मै हूँ तो अपमान भी करती हूँ। नहीं तो कोई तुम्हारा अपमान करनेवाला भी नही। कही जाकर देखो न, देखूँ—कौन अपमान करता है ?

धीवर०—क्यो नही करेगा? उस दिन स्वयवरकी सभामे ही उन लोगोने अपमान किया था !

धी० रानी—तुम्हारा अपमान किया था ? यह क्या ! मनुष्य तो मनुष्यका ही अपमान करता है, गोबरके छोतका भी कोई अपमान करता है ?—(माधवसे) तुमने कहीं सुना है ?

माधव—छी छी छी ! तुम्हारा पति क्या गोबरका छोत है ? नही, अब और अपमान मत करना ।

धी० रानी—अच्छा—अब घर चलो ।—अब अपमान नहीं करूँगी ।—आओ ।

माधव—जाओ ।—जाकर हाथ पकड लो ।

(धीवरराज धीरे धीरे जाकर डरता हुआ अपनी स्त्रीका हाथ पकड़ता है ।)

माधव—यह ठीक नही हो रहा है ! डरो नहीं ।

धीवर०—क्या करूँ ?

माधव—जरा आदरके और प्यारके साथ हाथ पकड़ो ।

धी० रा०—आदर और प्यार फिर कभी होगा । (खीचकर ले जाती है)

माधव—बेशक, दोनो ही विचित्र हैं ।

चौथा दृश्य

स्थान—गंगा-तट

समय—प्रातःकाल

[बहुतसे लोग स्नान कर रहे हैं और बहुतसे गा रहे हैं ।]

गीत

पतित-उधारनि गंगे ।
श्यामविटपघनतटविप्लाविनि धूसरतरंगभंगे ॥ प० ॥
बहु नग-नगरी तीर्थ भये तुव चूमि चरणजुग माई,
बहु नरनारी धन्य भये हैं तेरे नीर नहाई,
बहो जननि यहि भारतमहँ तुम बहुशतयुगसों आई,
हरे भरे करि बहु मरु-प्रान्तर शीतलपुण्यतरंगे ॥ प० ॥
नारदकीर्त्तनपुलकित केशव, तिनकी करुणा झरती,
ब्रह्मकमंडलुसों उछरी, शिवसीसजटापर परती,

गिरी गगनसों शतधारा, ज्यों ज्योति-उत्स तम हरती,
भूपर उतरि हिमालय जड़महँ, शोभित सागरसंगे ॥ प० ॥
जब तजि भवके सुखदुख मैया, सोवहुँ अन्तिम शयने,
बरसौ कानन निज जल-कलरव, देहु नींद मम नयने,
बरसौ शान्ति सशंकित हियमहँ, बरसि अमृतसम अंगे,
मा भागीरथि ! जाह्नवि ! सुरधुनि ! कलकल्लोलनि ! गंगे ! ॥ प०

(सबका प्रस्थान)

[गंगाका प्रवेश]

गंगा—इसी नदीतटपर बहुत दिनसे भीष्म और परशुरामका घोर शस्त्रयुद्ध हो रहा है। न कोई जीतता है और न कोई हारता है। संसारने भयसे अवाक् होकर वह युद्ध देखा है—और विस्मयके साथ समुद्र-गर्जनके समान वह समर-कल्लोल सुना है। तो भी, इतने दिन लड़कर भी भीष्म नहीं हारे। धन्य भीष्म ! धन्य पुत्र !

[व्यासका प्रवेश]

व्यास—जननी जाह्नवी, व्यास चरणोंमें प्रणाम करता है।

गंगा—क्या खबर है व्यास ?

व्यास—जननी, तुम्हारे किनारे आज मैं यह क्या देख रहा हूँ ! मनुष्य और भगवान्‌का यह कैसा घोर और विधिविरुद्ध युद्ध हो रहा है ! क्षत्रिय और ब्राह्मणका—शिष्य और गुरुका संग्राम क्या उचित है ? तुम जननी, भयसे चुपचाप बिना हिले-डुले इस दुर्घटनाको देख रही हो ?

गंगा—भयसे नहीं व्यास, बड़े ही आनन्दसे चुपचाप देख रही हूँ। पुत्रके गौरव-गर्वसे आज मैं फूली नहीं समाती। एक ओर गुरुदेव हैं, दूसरी ओर शिष्य है। ब्राह्मणके सामने क्षत्रिय खड़ा है। भगवान्‌के विरुद्ध उनका उत्पन्न किया हुआ मनुष्य है। तो भी मेरा पुत्र भीष्म

हिमाचलकी तरह अटल होकर युद्ध कर रहा है। किसने कब ऐसा आश्चर्य देखा है? किसका ऐसा पराक्रमी पुत्र है व्यास?—

व्यास—तो भी जननी, ब्राह्मण और क्षत्रियका यह युद्ध अनुचित है।

गंगा—कभी नहीं। पुत्र व्यास, भार्गवने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया है। उन्हींके रक्त-बीजसे उद्भूत ब्राह्मणके घमंडको मिटानेके लिए भीष्मने जन्म लिया है।

व्यास—मगर ईश्वरके साथ मनुष्यका युद्ध क्या संगत है—क्या वैध और उचित है माता?

गंगा—वत्स व्यास, यह मनुष्य-जीवन भी क्या ईश्वरके साथ अनन्त और नित्य युद्ध नहीं है? एक ओर मृत्यु है और उसके काले रंगके पिशाचोंका दल है, और दूसरी ओर असहाय दुर्बल मनुष्य है। मनुष्यके दुःखोंको देखकर मैं दिनरात निर्जन एकान्तमें रोया करती हूँ—रोना निष्फल है—वह बेकार पत्थरपर सिर दे दे मारना है। तुम क्या समझोगे व्यास, तुम क्या समझोगे!

व्यास—तो भी माता—

गंगा—व्यास, मनुष्य भ्रांतिके सागरमें पड़ा हुआ है, तो भी वह अपनी शक्तिके बलसे तरंग-गर्जनको पद-दलित करता हुआ निर्भय भावसे चला जा रहा है—यह क्या साधारण घटना है? मनुष्य घने गहरे अन्धकारसे निकलकर सूर्यकी तरह सभ्यताके प्रकाशपूर्ण मार्गमें जा रहा है—यह क्या तुच्छ बात है? मनुष्यका जन्म अभावके गर्भमें हुआ है, और वह स्वार्थके युद्धकी गोदमें पला है; तो भी वह अपनी शक्तिसे स्वार्थ-त्यागके शिखरपर चढ़ गया है—यह क्या अत्यन्त सहज गौरव है व्यास? उन सब मनुष्योंमें भी मेरा पुत्र भीष्म सर्वोपरि है,—

जिसके चरणोमे मृत्यु भी शान्तरूप धारण किये लोट रही है—स्वार्थ-त्यागके कोड़ेकी कड़ी चोटसे डरकर सिर नीचा किये पड़ी हुई है !

व्यास—मगर ईश्वरके साथ—

गगा—मेरे लिए केवल एक ईश्वर है और वे महादेव है—मैं उन्हींकी आज्ञा मानती हूँ।

[महादेवका प्रवेश]

महा०—तो गंगा, मै आज्ञा देता हूँ कि इस युद्धको शान्त करो—अपने शान्तिमय जलसे इस अग्निको बुझा दो। देवव्रत इच्छा-मृत्यु है—उनकी मृत्यु उनकी इच्छाके अधीन है, और परशुराम भी अमर है। इस युद्धका अन्त नही है। गंगा, अगर और कुछ दिनतक यह युद्ध होता रहा, तो प्रलय हो जायगा।

गंगा—जो आज्ञा स्वामी,—लेकिन महादेव, आपने माताके हृदयसे माताका गर्व छीन लिया।

महा०—पर इस युद्धमे परशुरामकी ही हार होगी।

(महादेवका प्रस्थान)

गंगा—तो फिर वही हो—अच्छा जाओ ऋषिवर। (प्रस्थान)

व्यास—अब द्वेष मिट गया। चराचर जगत्‌की भ्रान्ति मिट गई। ऐसी गलती थी ! शकर, तुम सचमुच शंकर (कल्याणकर्ता) हो।

(व्यासका प्रस्थान)

[भीष्मका प्रवेश]

भीष्म—कहॉ है भार्गव ?—इसी टीलेपर उनकी राह देखूँगा।

(टीलेपर खड़े होते हैं।)

भीष्म—कितनी दूरतक दिखाई पड़ता है ! उस पार घने श्याम वर्णके पेड़ोकी पंक्तिके ऊपर उषाकी सुनहली किरणे स्वागत-चुम्बनके समान आकर पड़ रही है। इधर उज्ज्वल रेती दूर तक दिखाई दे

रही है । बीचमे देवी जाह्नवी है ।—जननी, यह तुम्हारा बहुविस्तृ जलमय वक्ष:स्थल अपार करुणासे परिपूर्ण है । हर एकको हृदय स्थान देनेके लिए तैयार यह तुम्हारी गोद मनको मुग्ध बनाती है द्वेषको दूर भगाती है, उमडे हुए ईर्षा और अहकारके भावको शान करती है—माता, चरणोंमे प्रणाम करता हूँ । (प्रणाम करके बैठ जाते हैं

[परशुरामका प्रवेश]

परशु०—लो, देवव्रत तो पहलेहीसे आकर बैठे है ।—देवव्रत

भीष्म—(चौककर) आगये गुरुदेव ! (प्रणाम करते हैं)

परशु०—उठो वीर, आज निर्मल प्रभातकालमे, इस गंगातटपर इस अरुण-किरण-रञ्जित नील आकाशके नीचे, हाथ भरके फासलेप खड़े होकर, भीष्म और परशुराम दोनो, शिरपर शिरस्त्राण और शरीर पर कवच धारण किये—हाथमे खड्ग लिये—ऑखे लाल और मुट्ठ मजबूत किये—युद्ध करेगे । आज यह फैसला होगा कि बाहुबल कौन श्रेष्ठ है—भीष्म या परशुराम । लो तरवार लो ।

भीष्म—युद्ध किस लिए गुरुदेव ? दूरपर दृष्टि डालकर देखिए—कैसा अपूर्व दृश्य है ! उस पार सूर्यनारायण निकल रहे है—धीरे धी पूर्व दिशामे प्रकाश फैलता आ रहा है । दिन और रातके इस प्रशान सन्धि-स्थलमे, इस वसन्तऋतुकी धीमी हवाके सुशीतल सचारमे, गगाक पवित्र तटपर अब युद्ध किस लिए ?

परशु०—देखूँगा कि इस द्वापरयुगमे ब्राह्मण बड़ा है या क्षत्रिय

भीष्म—ऑखोके आगे खडे हुए गुरुदेवके शरीरपर मै कैसे प्रहा करूँ ?

परशु०—तुम्हारे सारे पाप तुम्हारे रुधिरके प्रवाहमे धुल जायेंगे भीष्म, युद्ध करो । मैंने तुमको समरके लिए बुलाया है । तुम तरवा

लो, और मैं अपना यह परशु लूँ, जिससे पृथ्वीको इक्कीस वार क्षत्रिय-शून्य कर चुका हूँ।—भीष्म, हाथमे शस्त्र लो।

भीष्म—अच्छा तो फिर वही हो!—स्वर्ग, पृथ्वी और पातालके रहनेवालो, इस अपूर्व संग्रामको ध्यान देकर देखो—

परशु०—देवव्रत, अपनेको बचाओ। (दोनोका युद्ध)

भीष्म—बस, अब नही। गुरुके शरीरको चोट पहुँचा चुका।

परशु०—कुछ नही, कुछ नही भीष्म, मेरे बाएँ पैरमे साधारणसी चोट लगी है। शस्त्र लो, आओ, युद्ध करो। और! और भीष्म, बहुत दिनोसे मैने ऐसा युद्ध नही किया था। मेरे सब अंगोमे—नस-नसमे—गर्म रुधिर युद्धके उल्लाससे नाच रहा है। युद्ध करो। और! और!

भीष्म—और नही। गुरुके निकट शिष्य हार स्वीकार करता है।

परशु०—लेकिन मै गुरु, अपने शस्त्रके बलसे प्राप्त किये बिना ऐसी कोरी जयको स्वीकार नही करता।—देवव्रत, फिर तरवार लो।

भीष्म—गुरुदेव,—

परशु०—इस समय कुछ भी अनुनय-विनय नही चलेगा। आओ, युद्ध करो। और कुछ नही चाहता—युद्ध करो वीर। बहुत दिनसे मैने ऐसा युद्ध नही किया था शिष्यश्रेष्ठ, आओ। युद्ध करो। युद्ध करो।

(फिर दोनोका युद्ध)

(भीष्मकी तरवारके प्रहारसे परशुरामके हाथसे परशु गिर पड़ता है। परशुराम झुककर फिर उसे उठाते हैं)

भीष्म—बस, अब नही, (तरवार फेक देते हैं)

परशु०—यह क्या भीष्म, मै हार नही मानूँगा। युद्ध करो, युद्ध करो—

भी०—भगवन्!—

परशु०—युद्ध करो। देवव्रत, मुझे यही गुरुदक्षिणा दो। युद्ध करो—युद्ध करो।—यही अन्तिम बार है—किन्तु इस बार प्रलय होगा। भीष्म, तरवार लो। विलंब नही सहा जाता। (परशु उठाते हैं)

(इतनेमे दोनोके बीचमे होकर गगा नदी बहने लगती है। धीरे धीरे नदीका पाट चौड़ा होता चला जाता है। परशुराम अन्तर्धान हो जाते हैं। फिर नदीके बीचसे गगा प्रकट होती है।)

गगा—शाबाश, देवव्रत शाबाश! मेरे बेटे, तुम धन्य हो। देखो बेटा, ऑख उठाकर देखो, भीष्मके अलौकिक अद्वितीय पराक्रमको देखकर विस्मय और आनन्दसे ससारके सब लोगोके रोमांच हो आया है। वीरश्रेष्ठ, वह देखो, ऊपर आकाशसे स्वर्गवासी देवगण तुम्हारे सिरपर फूलोकी वर्षा कर रहे है।

[परशुरामका प्रवेश]

परशु०—और देखो वीर, परशुराम अपने शिष्यके गौरवसे फूला नहीं समाता।—धन्य हो देवव्रत, मै भी तुमसा शिष्य पाकर धन्य हूँ। मै केवल तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। तुम्हे मारनेके लिए नहीं आया था। सचमुच आज मैंने देख लिया कि वीरतामे, विक्रमसें, साहसमे या स्वार्थ-त्यागमे इस विशाल पृथ्वीमण्डलपर तुम्हारे तुल्य और कोई नही है।—मेरे शिष्य, तुम धन्य हो! देवव्रत! प्राणाधिक! आओ, तुमको गलेसे लगा लूँ।



पाँचवाँ दृश्य

स्थान—हस्तिनापुरके राजमहलका अन्तःपुर

समय—रात

सत्यवती अकेली गाती है

पद

केहि सुख जीवन राखैं।
मेरे चन्द्र सूर्य दोउ अथए, फूटी दोऊ ऑखें॥
चारों दिसि वस अन्धकार है, बुझी सबै अभिलाखैं॥ के०

सत्य०—मेरे दोनो पुत्र नही रहे। मै आज घृणित, पददलित, विधवा महारानी हूँ। तो भी अनन्त-यौवना हूँ! बडा अच्छा वर दिया था ऋषिश्वर! धन्य जगदम्बे! तेरी असीम करुणा है! मैया, तेरा दयामयी नाम बहुत ठीक है!—ना ना, यह सब वृथा है। किसीका दोष नहीं जननी, यह सब मेरा ही दोष है। यह दभ प्रकृतिके नियमपर लाल लाल ऑखे करके टूट पडा था—इसने आकाशतक सिर उठाया था, परन्तु माता, तुमने एक ही लातमे उसे चूर करके मिट्टीमे मिला दिया। महेश्वरी, तेरी नियम-श्रृखलाकी जय हो!—प्रचण्ड सूर्यको वह बादल ढके लेता है, जलकणोसे मिली हुई शीतल हवा चल रही है—थकानसे ऑखोमे नींद आरही है। सो जाऊॅ। (धरतीपर सो जाती है)

[भीष्म और व्यासका प्रवेश। साथमे मुक्ता दासी है।]

मुक्ता—अभी यहींपर तो थीं!

भीष्म—वे देखो, वहॉ लेटी हुई है।

व्यास—ये ही तो मेरी माता हैं!

सत्य०—(नींदकी हालतमे) ना ना, मत छुओ—मुझे मत छुओ

मुक्ता—ये देखो सपना देख रही है—

भीष्म—बीच बीचमे क्या इसी तरह इस हालतमे बका करती हैं?

मुक्ता—हाँ, जी हाँ।

भीष्म—इतनी दुर्बल हो गई है!

सत्य०—ना ब्राह्मण ना ब्राह्मण—मै वर नही चाहती, मै वर नहीं चाहती। मुझे छोड़ दे, मुझे छोड़ दे, तेरे पैरो पडती हूँ। छोड दे।

व्यास—अभागिन बेचारी!

सत्य०—मेरा बेटा कहाँ है? मेरा—

व्यास—तुम्हारा बेटा यह खड़ा है जननी!

सत्य०—कहाँ है! कहाँ है! (उठ खड़ी होती है)

भीष्म—ये महर्षि व्यासजी है।

व्यास—और भी एक परिचय है—द्वीप (टापू) मे मेरा जन्म हुआ है, इससे मै द्वैपायन कहलाता हूँ और काला रंग है, इससे मुझे कृष्ण द्वैपायन भी कहते है।

सत्य०—द्वीपमे जन्म हुआ है?

व्यास—हाँ, और मेरे पिता पराशर ऋषि है।

भीष्म—गिरती है—कोई सँभालो।

[मुक्ता सत्यवतीको थाम लेती है]

सत्य०—(क्षीण स्वरमे) और माता?

व्यास—माता सत्यवती है—महाराजा सान्तनुकी रानी।

सत्य०—बेटा—बेटा—यह क्या, चक्कर आ रहा है—क्षमा करो देवगण, मेरे पापोको धो दो। और मुझे अपने पुत्रको पुत्र कहकर पुका-

रनेका अधिकार दो।—पुत्र व्यास!—नहीं नहीं, मै क्या प्रलाप बक रही हूँ! ऋषिवर! मै—यह धीवरकी कन्या, यह अभागिनी महाराज शान्तनुकी विधवा रानी, यह नारी, क्या देशपूज्य ऋषिश्रेष्ठ व्यासकी जननी है?

व्यास—हॉ, तुम्ही मेरी जननी हो।

सत्य०—तुम्हारी जननी!—बेटा! बेटा!—क्या यह सच है?—मै माता हूँ और तुम पुत्र हो! मै कलंकिनी हूँ, तुम भारतप्रसिद्ध व्यास ऋषि हो!—बेटा व्यास, यह वाणी सुनकर क्या तुम मुझे घृणा नही करते? ना ना, घृणा न करना। निष्ठुर जगत्मे इस बातकी घोषणा कर दो कि "मत्स्यगन्धा कलंकिनी है, भ्रष्टा है, पापिनी है और पतिकी हत्या करनेवाली है!"—प्रचार कर दो। पर बेटा, तुम घृणा न करना। मै कलंकिनी हूँ—

व्यास—तथापि पुत्रके लिए जननी सदा जननी ही है। आशीर्वाद दो माता। (घुटने टेक देते हैं)

भीष्म—यह क्या! पापिनीके पैरोके नीचे महर्षि व्यास!

व्यास—जननीके पैरोपर पुत्र सिर रखकर प्रार्थना करता है। जननी ही पुत्रके लिए गुरु है। शिष्यको गुरुके आचारके सम्बन्धमे विचार करनेका कुछ अधिकार नही है। माताका दर्जा ब्राह्मणसे बढ़कर है। माताका दर्जा ऋषिसे बढ़कर है। जननी स्वर्गसे भी बढ़कर है।

भीष्म—किन्तु जो स्त्री कुलटा है—

व्यास—देवव्रत, तुम महत् हो तो भी क्षत्रियके बेटे हो। तुममे क्षमाकी महिमा समझनेकी शक्ति नही है। भीष्म, तुम क्षत्रियके महत्त्वके सर्वोच्च शिखरपर पहुँच गये हो—पर अब भी ब्राह्मणसे बहुत नीचे हो।

भीष्म—परशुराम भी ब्राह्मण थे। उन्होने अपनी कुलटा माताका सिर काट डाला था।

व्यास—परशुराम ब्राह्मण है भीष्म? हाँ, अच्छे खासे ब्राह्मण हैं! तब ही तो परशु उनका अस्त्र है! जो ब्राह्मण अपना धर्म छोड़कर क्षत्रियके धर्मको ग्रहण करता है, वह फिर ब्राह्मण नहीं माना जा सकता। शास्त्र छोड़कर शस्त्रकी चर्चा करना ब्राह्मणका काम नहीं है। इसीसे भार्गव रामचन्द्रसे हार गये। क्षत्रियसे ब्राह्मणकी हार हुई। भगवान् मनुष्यसे पराजित हो गये।

भीष्म—मै अपने गुरुकी निन्दा नहीं सुन सकता।

(जाना चाहते हैं)

व्यास—ठहरो देवव्रत, सुनो वीर, तुम क्षत्रिय हो। शस्त्रकी चर्चा करो; शास्त्रकी चर्चा मत करो। अपनी कक्षासे मत हटो—नहीं तो प्रलय हो जायगा। (सत्यवतीसे) देवि, मेरी माता, व्यासके पुण्य-बलसे तुम्हारे सब पाप धो जायँ। मेरे वरमे स्नान करके तुम सब पापोसे मुक्त हो जाओ। तुम व्यासकी जननी हो—अपने चरणोंकी धूलसे मेरा मस्तक पवित्र करो।

सत्य०—यह क्या मै स्वप्न देख रही हूँ? यह क्या सच है?—यह कैसी पहेली है! यह क्या व्यंग है?—यह तो कुछ समझमें नहीं आता।

(सत्यवती गिरना चाहती हैं, इतनेमें गंगा प्रवेश करके उन्हें पकड़ लेती हैं)

गंगा—सत्यवती,—स्थिर होओ!

सत्य०—(क्षीण स्वरसे) कौन हो तुम रमणी!

गंगा—मैं तुम्हारी सौत गंगा हूँ। मेरे ही गर्भसे देवव्रतका जन्म हुआ है। सदा मनुष्यके दुःख देखकर रोया करती हूँ—बहन, विश्व-भरसे मैंने यही महाधिकार पाया है! बढ़े हुए घमण्डका गर्व मैं चूर्ण करती हूँ; व्यथितके लिए आँसू बहाती हूँ; सहानुभूतिके मारे घृणितको गलेसे लगा लेती हूँ और शान्ति-जलसे पछतावेको धो देती हूँ।—बहन, मेरे आँसुओंके जलसे तुम्हारे पहलेके सारे पाप धो जायँ।

छठा दृश्य

स्थान—पहाड़के किनारे मसान

समय—रात

[पर्वतके शिखरकर बैठी अम्बा तपस्या कर रही है। मसानमें महादेवके आगे भूतगण गाते हैं]

भूतनाथ भव भीषण भोला विभूतिभूषण त्रिशूलधारी।
भुजंगभैरव विषाणभूषण ईशान शंकर श्मशानचारी॥
वामदेव शितिकंठ उमापति धूर्जटि पशुपति रुद्र पिनाकी।
महादेव मृड् शंभु वृषध्वज व्योमकेश त्र्यम्बक त्रिपुरारी॥
स्थाणु कपर्दी शिव परमेश्वर मृत्युंजय गंगाधर स्मरहर।
पंचवक्त्र हर शशांकशेखर कृत्तिवास कैलासविहारी॥

(धीरे धीरे सबेरा होता है और भूत गायब हो जाते हैं।

महा०—(अम्बासे) तुम कौन हो? किस लिए इस पर्वतके शिखर-पर तप कर रही हो?

अंबा—(आँखें खोलकर) आप कौन है?

महा०—मैं महादेव हूँ।

अंबा—(उठकर) महादेव! (पर्वतके शिखरसे नीचे उतरती है)

अंबा—काशिराजकी कन्या अंबा चरणोंमे प्रणाम करती है।

महा०—कुमारी, तुम किस लिए यह कठोर तप कर रही हो? खाना-पीना-सोना छोड़कर अपने कुसुम-कोमल शरीरको क्यों कष्ट दे रही हो? तुम क्या चाहती हो?

अंबा—भीष्मकी मृत्यु, वह भी मेरे हाथसे—बस, इतना ही चाहती हूँ।

महा०—यह कैसा वर है नारी? तुम केवल प्रतिहिंसाके लिए अपने इस यौवनप्लावित सुन्दर श्रेष्ठ शरीरको मिटा रही हो? राजकुमारी, यह बात क्या रमणीको सोहती है?

अंबा—क्यों न सोहती महेश्वर? पुरुष क्या यह समझते हैं कि स्त्रियाँ उनके सब अविचारों और अत्याचारोंको चुपचाप सिर झुकाकर सहती रहेंगी? उनकी ममताहीन कठिन जहरीली तरवारके आगे स्त्रियाँ अपनी गरदन ही बढ़ाती रहेंगी? उनके मर्मभेदी व्यवहारके बदले उन-पर स्निग्ध स्नेहधाराकी ही वर्षा करती रहेंगी?

महा०—हाँ, स्त्रीका यही काम है—यही कर्त्तव्य है।

अंबा—और पुरुषका काम है नित्य अत्याचार करना—तरह तर-हसे सताना!—ना ना, मैं यह स्वीकार नहीं कर सकती कि पुरुषका धर्म है हलाल करना और स्त्रीका धर्म है केवल सिर झुकाकर सब कुछ सह लेना।

महा०—रमणीका यही कर्त्तव्य है। सहनशीलता ही स्त्री-जातिका प्रधान गुण है। वह इस जगत्‌मे सदा स्नेहवती, प्रेममयी और सेवामयी है। वह फूलोंमे कमलके समान सरोवरके सुविमल जलमें केवल प्रफुल्लित विकसित रहकर शोभा-सौन्दर्यको फैलाती रहती है।—यही नारीका धर्म है। रमणी यदि रमणीके धर्मको छोड़ देगी, तो पृथ्वीपरसे गौरव-गरिमा उठ जायगी।

अम्बा—भले ही उठ जाय महादेव, इसमे मेरी क्या हानि है? इससे मुझे क्या? ब्रह्माण्डकी रक्षाका भार मैंने नही ले रक्खा है। जिन्होने सृष्टिकी रचना की है, वे ही उसकी चिन्ता करे।

महा०—सुनो पुत्री!—

अम्बा—सुननेको समय नहीं है, मैंने भीष्मको मारनेकी प्रतिज्ञा की है। मुझे उससे आप एक तिलभर भी नही डिगा सकते। वरदान दोगे या नही? मै बदला चाहती हूँ—प्रतिहिंसा! बोलो—दोगे या नही?

महा०—अगर न दूँ?

अम्बा—तो यही आसन जमाकर फिर तप करूँगी। शंकर, यह वर न दोगे? तुम्हे देना ही पडेगा। तुम क्या नियमके अधीन नही हो? तुम क्या स्वेच्छाचारी हो विश्वनाथ? देना ही पड़ेगा तुमको। मैंने सुना है, कि तन-मनसे कीगई कोई भी साधना कभी निष्फल नही जाती—प्रभु, इसी जगह पाप-पुण्यमे भेद नहीं है। एकान्त साधनाको सफल होना ही होगा—इस जन्मने या दूसरे जन्मने, एक दिन उसे सफल होना ही होगा। तपस्या कभी निष्फल नही जाती। बोलो, यह वर दोगे या नही?

महा०—मै यह वरदान नही दे सकता। तुम और कोई वर मॉग लो। देवव्रतकी मृत्यु उनकी इच्छाके अधीन है। उनको विना उनकी इच्छाके मार डालना असंभव है।

अम्बा—मेरी साधनाके बलसे यह देवव्रत, केवल इच्छासे नहीं, हाथ जोडकर घुटने टेककर अपनी मृत्युकी प्रार्थना करेगा।—महादेव, मैं बहस नहीं करना चाहती। मै भीष्मकी मृत्यु चाहती हूँ, और वह मृत्यु इन्ही कुसुम-कोमल हाथोसे। बोलो, दोगे या नहीं?

[कुछ दूरीपर सन्यासीके वेशमें भीष्मका प्रवेश]

महा०—और वर मॉगो।

अम्बा०—नहीं, मै और वर नहीं चाहती।

महा०—अतुल सम्पत्ति मॉग लो!

अम्बा—मुझे न चाहिए।

महा०—अनन्त यौवन?

अम्बा—मै और कुछ नहीं चाहती। यही एक वर चाहती हूँ। दोगे या नही?

महा०—तुम विचित्र स्त्री हो!

अम्बा—हॉ विचित्र ही हूँ!

महा०—यह प्रतिहिंसा भी विचित्र है।

अम्बा—हॉ, वहुत ही विचित्र है।—यह वर दोगे या न दोगे भूतनाथ?—बोलो। अगर न दो, तो चले जाओ, मै फिर तप आरंभ करूँ। कहो मृत्युञ्जय, यह वर दोगे या नहीं?

महा०—तथाऽस्तु।—लेकिन इस जन्ममे नहीं, दूसरे जन्ममे। रमणी, तुम फिर इस पृथ्वीपर द्रुपदराजकी कन्या होकर जन्म लोगी। किन्तु तुम्हें इस प्रतिहिंसा-प्रवृत्तिके कारण स्त्रीभाव छोडना पड़ेगा। दूसरे जन्ममें तुम आधी स्त्री और आधी पुरुष होओगी।—पुरुषकी हत्या करनेवाली कोई (सम्पूर्ण) स्त्री हो—ऐसा पैशाचिक वर मैं नहीं दे सकता। इसीसे यह वर देता हूँ नारी।

अम्बा—दासी कृतार्थ हुई। प्रणाम करती हूँ। (प्रणाम करना)

महा०—विचित्र स्त्री है! (अन्तर्द्धान हो जाते हैं)

अम्बा—सारा जगत् स्त्रीकी प्रतिहिंसाके प्रतापको देखे! सारे देवगण रमणीकी प्रतिहिंसाको देखें! रमणीकी प्रतिहिंसा, मरने पर भी नहीं

जाती ! अब रमणीको कोई ‘ अबला ’ नहीं कहेगा; अब कोई स्त्रीकी क्रोधसे लाल हुई ऑखे देखकर हॅसेगा नही। अब पुरुष बेखटके स्त्रीको लात नही मारेगा। नारीके रोनेसे उसके ऑसूका हर एक बूॅद आगकी चिनगारीकी तरह प्रज्ज्वलित हो उठेगा। स्त्रीकी लम्बी सॉसे पुरुषके कानोमे सॉपकी फुफकार जैसी जान पडेगी। स्त्रीका आर्त्तनाद पुरुषको मृत्युका शाप देगा।—देखो भीष्म, देख ससार, नारीकी पिशाची मूर्ति देख। स्त्रीके हृदयसे भक्ति, स्नेह, क्रोध, घृणा आदि सब मिट जायॅ—केवल प्रतिहिंसा रहे—प्रतिहिंसा ! प्रतिहिंसा ! (प्रस्थान)

भीष्म—समझ गया राजकुमारी ! त्यागी जानेके कारण ही तुमने यह भैरवी मूर्ति धारण की है।— हाय, अगर मैं तन-मनसे गलकर एक करुणाका सागर बन जा सकता, तो उसके जलसे तुम्हारी इस जलनको बुझा देता।—विश्वपति ! मुझे यह वर दो कि मेरे रक्तसे यह रमणी तृप्त हो और इसे वह रक्त मै हॅसते हॅसते दे सकूॅ।

(पर्दा गिरता है)



पाँचवाँ अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—कौरवोकी सभा

समय—प्रातःकाल

[दुर्योधन, दुःशासन, द्रोण, भीष्म आदि बैठे हैं। सामने श्रीकृष्ण खड़े हैं।]

कृष्ण—महाराज दुर्योधन, धृतराष्ट्र मृत महाराज विचित्रवीर्यके बड़े बेटे है और पाण्डु छोटे। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे, इससे उन्होने राज्य नही पाया, राजगद्दी पाण्डुको मिली। तुम एक सौ भाई धृतराष्ट्रके पुत्र हो, इस कारण राजाके पुत्र नही—राजाके पोते हो। लेकिन युधिष्ठिर आदि पाँचो भाई पाण्डुके पुत्र होनेके कारण राजपुत्र हैं। यह राज्य उन्ही लोगोका है। कमसे कम इस राज्यमे उनका आधा हिस्सा अवश्य है, जिससे उन्हे कोई वञ्चित नही कर सकता।

दुःशासन—किन्तु उनका हिस्सा—यहाँ तक कि स्त्री भी—युधिष्ठिर पाँसोके खेलमे हार गये है। हम लोगोने रिआयत करके उन्हें उनकी स्त्री फेर दी है।

कृष्ण—उस जुआ खेलनेका प्रायश्चित वे लोग यथेष्ट कर चुके। राजपुत्र होकर बारह वर्ष तक वनवासी रहे, एक वर्ष तक अपनेको छिपाये रखकर दूसरेकी नौकरी भी उन्होने की। अब वे पाँच भाइयोंके लिए सिर्फ पाँच गाँव माँगते है।

दुर्योधन—वे लोग अगर राज्य चाहते है, तो युद्ध करके ले लें। उनमेंसे भीम तो भरी सभामें बहुत धमकाकर कह गया था कि वह अपनी

गदाकी चोटसे मुझे चूर कर डालेगा—और दुःशासनका खून पियेगा।

दुःशासन—दादा, उस बातके उठानेकी जरूरत ही क्या है? हम राज्य वापस नही देते। राज्य हम लोगोका है, इस लिए उसे नहीं लौटाते। सीधी बात है।

कृष्ण—किन्तु युधिष्ठिर तो आधा राज्य भी नही मॉगते।

दुःशासन—हम चौथाई भी न देगे।

कृष्ण—वे चौथाई भी नही चाहते। सिर्फ पॉच गॉव चाहते है।

दुःशासन—हम एक भी नही देगे।

दुर्योधन—युद्ध करके ले ले। भीम बहुत ही—

दुःशासन—फिर वही, दादा—तुम भीमका नाम ही क्यो लेते हो?—सीधी बात यही क्यो नही कहते कि राज्य नही देगे?

कृष्ण—शकुनि, तुम बराबर दुर्योधनके कान भर रहे हो और तुम्ही इस षड्यन्त्रकी जड हो।

शकुनि—(आश्चर्यका भाव दिखाकर) मै?

कृष्ण—महाराज दुर्योधन, मै तुमसे उदार बननेके लिए नही कहता, दाता बननेके लिए नही कहता, देवता बननेके लिए नही कहता। तुम इस समय हस्तिनापुरके राजा—भारतके सम्राट् हो। राजाका कर्त्तव्य है न्याय करना।—न्याय करो। वे तुम्हारे भाई है। वे बलवान् है, विराट्के यहॉके युद्धमे इस बातका निर्णय हो गया है। वे क्षमाशील है, द्वैतवनमे गन्धर्ववाले झगडेमे तुम इसका भी प्रमाण पा चुके हो। वे निरीह सीधे सादे है; इसका प्रमाण यही है कि वे अपना सारा राज्य छोडकर केवल पॉच गॉव तुमसे मॉगते है। ऐसे भाइयोसे बिगाड करके उन्हे क्रोधित मत करो। ऐसे भाइयोको शत्रु न बनाओ। नहीं तो याद रक्खो, सर्वनाश हो जायगा!

द्रोण—जाइए वासुदेव, यहाँ आपका समझाना सफल नहीं होगा। यह ऊसर मरुभूमि है। यहाँ वरसातका पानी नहीं ठहरता।

कृष्ण—शकुनि, जो कुछ पाप करना था, सो तुम कर चुके। अब उसे और न बढ़ाओ। पापकी मात्रा पूर्ण हो चुकी है। धर्म अब नहीं सहेगा। देखो, यदि तुम चाहो और चेष्टा करो, तो यह युद्ध रुक सकता है।

शकुनि—(आश्चर्यसे) मैं ?

कृष्ण—हाँ तुम! तुम इनके मामा हो और मन्त्री हो। क्षमताकी मदिरा पिलाकर दुर्योधनको तुमने ही मतवाला बना दिया है। तुम इस राजमहलको पापके पत्थरोंसे जड़ रहे हो। तुम—न जाने किस मन्त्रके बलसे—इन लोगोंके—खासकर इस अबोध युवक (दुर्योधन) के मनपर अपनी छाप जमाये बैठे हो।

शकुनि—(आश्चर्यसे) मैं ? ना वासुदेव, मैं इस मामलेके बीचमें नहीं हूँ।

कृष्ण—तो अभी अभी तुम दुर्योधनके कानमें क्या कह रहे थे ?

शकुनि—(आश्चर्यसे) मैं!—वह—मैं पूछ रहा था कि ऐसी घटा उठी है, इस समय—ऍ—ऍ—ऍ—आज ऍ—खिचड़ी पकाई जाय तो कैसा!

कृष्ण—खिचड़ी तो जो पकानी थी सो पका चुके—वाह, क्या खूब खिचड़ी पकाई है!

शकुनि—और जरा—

कृष्ण—देखता हूँ, तुम सब समझते हो। तुम बड़े कूटनिपुण हो, बड़े बुद्धिमान् हो। मैं नहीं विश्वास करता कि तुम खुद यह नहीं समझते कि तुम अपनी करतूतसे राज्यमें अनर्थ और सर्वनाशको बुला रहे हो।

शकुनि—श्रीकृष्ण, मै कुछ नही करता। जो कुछ करता है, सो भाग्य कर रहा है। नही तो धर्मराज युधिष्ठिर वनको जाते और उनकी जगहपर महाराज दुर्योधन—

दुर्योधन—क्या कहते हो मामा?

शकुनि—और दुर्योधन—भीष्म, विदुर, द्रोण, कृप आदि अच्छे अच्छे आदमियोके रहते शकुनिको अपने राज्यका मन्त्री बनाते?

दुर्योधन—यह क्या कह रहे हो मामा?

शकुनि—भाग्यके लिखेको कोई नही मेट सकता। भाग्यमे अगर लिखा है कि भीम दुर्योधनका खून पियेगा, तो वह अवश्य पियेगा—

दुःशासन—सो कैसे पियेगा?

शकुनि—और अगर भाग्यमे लिखा है, तो भीमसेन अपनी गदासे दुर्योधनकी जॉघ भी अवश्य तोडेगा।

दुर्योधन—यह क्या कह रहे हो मामा?

शकुनि—अरे भैया, मामा मामा क्यो कर रहे हो? तुम्हारा मामा तुम्हारा ही है, उसे कोई छीने नही लेता। तकदीरके लिखेको कोई मेट नहीं सकता। तुम्हारा मामा तो मामा ही है, तुम्हारा—

कृष्ण—तो पाण्डवोंके पास यही खबर ले जानी होगी?

दुर्यो०—हॉ। उनसे कहिएगा कि दुर्योधन पाण्डवोको बिना युद्ध किये सुईकी नोक-भर भी पृथ्वी नही देगा।

कृष्ण—अच्छी बात है! तो फिर मै जाता हूँ।

शकुनि—यह क्यो! हम लोग आपको बुलाकर लाये है—यह जो उत्सवकी तैयारी आप देख रहे है सो सब आपहीके लिये है। आप देख रहे है न?

कृष्ण—हाँ, देख तो रहा हूँ। बडी भारी तैयारी है। लेकिन इसमे भक्तिकी अपेक्षा कीर्तन बहुत है।

दुर्यो०—सो कैसे?

कृष्ण—(शकुनिसे) मामा, ये लोग कुछ नही समझ सके। समझे तुम और मै।—अच्छा जाता हूँ महाराज।

शकुनि—जानेसे पहले कुछ जल-पान कर लीजिए—सत्कार ग्रहण कर लीजिए।

कृष्ण—इसकी जरूरत क्या है! बातचीतहीसे खूब तृप्त हो गया हूँ, अब और जरूरत नहीं है। (जाना चाहते हैं।)

दुर्यो०—(दु:शासनसे) पकड़ लो।

कृष्ण—मुझे पकड़ेगा? हायरे मूर्ख, मै खुद पकड़ाई न दूँ, तो मुझे क्या कोई पकड सकता है?—मामा, अबकी सयाने सयानेका सामना है।

दुर्यो०—जाओ, पकडो। आगे बढ़ो।

(दु:शासन, कर्ण आदि वीर कृष्णको पकडनेके लिए आगे बढते हैं। विश्वभरमूर्ति धारण करके कृष्ण जोरसे हँसते हैं और उन लोगोपर स्थिर दृष्टि करके व्यंगपूर्ण विनयसे सिर झुका लेते हैं।)

कृष्ण—तो फिर जाता हूँ महाराज! (अन्तर्धान हो जाते हैं।)

दुर्यो०—कोई नहीं पकड सका?

दु:शा०—नही। उनके नेत्रोमे न जाने कैसा अद्भुत दृश्य मैने देखा। जान पडा, जैसे उसमे एक साथ सृष्टि-स्थिति-प्रलय सब कुछ है। मै स्तंभित सा हो गया।

दुर्यो०—और तुम लोग?

कर्ण—मुझे भी ऐसा ही जान पडा।

दुर्यो०—कैसा ?

कर्ण—उसका वर्णन मै नही कर सकता। एक साथ ही भय, उल्लास, दुःख, करुणा, स्नेह—सब उस दृष्टिमे था। उस समय कैसा जान पड़ा, सो ठीक ठीक कहकर नही समझा सकता।

दुर्यो०—तुम सब कुछ नही हो। इन्ही लोगोको लेकर मै पाण्डवोसे लडना चाहता हूँ!

शकुनि—भाग्य!

दुर्यो०—कृष्ण कहाँ गये ?

कृपा०—पाण्डवोके डेरेमे।

दुर्यो०—तो वे पाण्डवोके पक्षमे है ?

कृपा०—हाँ महाराज।

दुर्यो०—लेकिन आपने तो कहा था मामा, कि इस युद्धमे कृष्ण हमारी ही तरफ होगे!

शकुनि—भैयाहो, इसमे जरा भी भूल नही हो सकती। मैने हिसाब लगाकर देखा है।

दुःशासन—क्या हिसाब लगाकर देखा है ?

शकुनि—यही कि इस युद्धमे तुम लोगोको कृष्ण-प्राप्ति होगी। मेरे हिसाबमे भी कही भूल हो सकती है ? जबतक तुम लोगोको कृष्ण-प्राप्ति नही होती, तबतक मै तुम लोगोका साथ नही छोड़ता। जाऊँ, जाकर उसकी तैयारी करूँ।—हिसाबमे फर्क नही पड़ सकता! (प्रस्थान)

दुःशा०—कुछ डर नही है दादा। कृष्णने अपनी दस करोड़ नारायणी सेना हम लोगोको दी है और प्रतिज्ञा की है कि मै खुद इस युद्धमे शस्त्र ग्रहण नही करूँगा। अकेले निरस्त्र वे पाण्डवोके पक्षमे रहकर क्या कर लेगे ?

([गान्धारीका प्रवेश])

गान्धारी—दुर्योधन !

(दुर्योधन सिंहासनसे उतर पडता है। और सब भी अपने अपने आसनसे उठकर खडे हो जाते हैं।)

दुर्यो०—कौरव-जननी राजसभामे क्यो आई हैं ?

गान्धारी—तो मेल असम्भव है ?

दुर्यो०—हॉ असम्भव है।

गान्धारी—बेटा, यह राज्य युधिष्ठिरको लौटा दो।

दुर्यो०—सो कैसे हो सकता है ?

गान्धारी—यह राज्य युधिष्ठिरहीका है।

दुर्यो०—सो कैसे माता !

गान्धारी—दुर्योधन, मै तेरी मा हूँ। मै आज्ञा देती हूँ—राज्य फेर दे। लौटा दे।

दुर्यो०—मगर पिता—

गान्धारी—तुम्हारे पिता वृद्ध और अन्धे है। एक तो दोनो ऑखोसे अन्धे है—और फिर पुत्रस्नेहसे और भी अन्धे हो रहे है।—उनकी सम्मतिका क्या मूल्य है ?—मै आज्ञा देती हूँ, मै माता हूँ। मै आज्ञा देती हूँ—युधिष्ठिरको राज्य फेर दे।

दुर्यो०—लेकिन पिता—सदा पिता है।

गान्धारी—और माता शायद सदा माता नहीं है ? लड़के, तुझे किसने नौ महीने पेटमे रक्खा है ? किसने तुझे दूध पिलाकर पाला है ? किसने दासीकी तरह नित्य तेरी सेवा की है ?—पिताने या माताने ! हाय विधाता !—यह पुत्र !—गर्भकी यन्त्रणासे मूर्च्छित माता उस मूर्च्छाके दूर होनेपर, अन्धा फकीर जैसे भीखमे मिले हुए पैसेको हाथ

बढ़ाकर खोजता है, केवल सन्तानको ही हाथ फैलाकर खोजती है। पुत्रका मुख देखकर प्रसूतिकी प्रसव-वेदना तीव्र सुखका रूप धारण कर लेती है। वह पुत्र उसके बाद भी केवल माताके स्नेहसे पलता और बड़ा होता है। मगर बड़े होनेपर वह समझता है कि माता जैसे उसकी कोई नहीं है! जननीका अनुरोध जैसे कोई चीज ही नहीं है—मानो घुटने टेके आँखोंमे आँसू भरे, हाथ जोडे भिक्षुककी दुर्बल प्रार्थना मात्र है। ओरे! ओरे मूढ! रे अबोध! माता यह जो तुझसे भिक्षा माँग रही है, सो भी तेरे ही भलेके लिए—अपने लिए नहीं—पुत्र, युधिष्ठिरको राज्य फेर दे।

दुर्यो०—नहीं माता, यह न होगा।

गान्धारी—उद्धत लडके, आज मदान्ध होकर माताकी आज्ञाका अनादर मत कर। तेरे सिरपर सर्वनाश उपस्थित है।

शकुनि—पाण्डवोंके दूत कृष्ण अन्तिम उत्तर लेकर चले गये है बहन, अब मेलकी तरफ जानेका उपाय नहीं है।

गान्धारी—अब भी उपाय है। अरे मूढ, धर्मकी राह सदा खुली रहती है।—राज्य फेर दे बेटा।

दुर्यो०—यह मुझसे नहीं हो सकेगा माता!

गान्धारी—तो पुत्र रहे या न रहे—धर्मकी जय हो! (प्रस्थान)

दुर्यो०—अरे यह क्या है!

दुःशा०—बिजली कडक रही है!

दुर्यो०—महलके ऊपर!

(दुर्योधन, भीष्म और द्रोणके सिवा सबका घबराये हुए भावसे प्रस्थान)

भीष्म—दुर्योधन, तुम्हारा चेहरा पीला क्यों पड गया? यह क्या! काँप क्यों रहे हो? इस घटनाके होनेवाले परिणाममे क्या अब भी सन्देह है?

दुर्यो०—यह क्या कहते हो पितामह, मैं युद्धमे जय अवश्य पाऊँगा। जिसकी ओर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अंगराज कर्ण आदि है—

भीष्म—परन्तु पाण्डवोके पक्षमे स्वयं जनार्दन है।

दुर्यो०—कौरवोके पक्षमें दस करोड नारायणी सेना भी है।

भीष्म—मगर पाण्डवोके पक्षमे जनार्दन श्रीकृष्ण है।

दुर्यो०—यह कई अक्षौहिणी सेना—

भीष्म—एक ओर अनेक अक्षौहिणी सेना है, दूसरी ओर धर्म है और सब धर्मोके मूल जनार्दन कृष्ण है—

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः *।

(प्रस्थान)

दुर्यो०—यह कैसा घोर अन्धकार है! घनी काली घटा असीम आकाशमे चारो ओर छा रही है। यह मूसलधार पानी बरसता चला आ रहा है!—जय! पराजय!—यह वीरोका चौपड़का खेल है—इसमें जीवनकी बाजी लगी है।—ना ना, प्राण दूँगा, लेकिन तो भी मान नही दूँगा।—कौन? ओ! गुरु द्रोणाचार्य है!—एकटक आप क्या निहार रहे है?

द्रोण—देखता हूँ, मेरे सामने स्नानके लिए एक बड़ी भारी रक्त-गंगा बह रही है। और, पाण्डव उसमे स्नान करके बाहर निकल रहे है।

दुर्यो०—क्यों गुरुदेव?

द्रोण—तुमने महात्मा भीष्मके वचन सुने!—"जिधर धर्म है उधर कृष्ण हैं, जिधर कृष्ण हैं उधर विजय है।"—भीष्मका कहा कभी मिथ्या नही हो सकता।

---

* जिधर धर्म है उधर कृष्ण हैं, जिधर कृष्ण है उधर विजय है।

दुर्यो०—तो फिर पितामह कौरवोंके पक्षमे क्यो है ?

द्रोण—भीष्मको मै नहीं जान सकता; लेकिन यह निश्चय है कि भीष्मका कहा कभी मिथ्या नही होता।

(दुर्योधनके सिवा सबका प्रस्थान)

दुर्यो०—जितना ही बढता हूँ, अन्धकार उतना ही और घना होता चला आता है।—कौन—मामा !

[शकुनिका प्रवेश]

शकुनि—हाँ मै हूँ।

दुर्यो०—सभामे फिरसे क्यो आये हो मामा ?

शकुनि—महाराज, मैने भविष्य देखा है—

दुर्यो०—किसका ?

शकुनि—इस युद्धका। इस समरमे जय अच्छी तरह निश्चित है—वह हो चाहे जिस पक्षकी। लेकिन तुम्हारी यह प्रतिज्ञा अटल रहेगी कि "प्राण दूँगा, पर राज्यका थोडासा हिस्सा भी नही दूँगा।" यह मैने निश्चय जान लिया।

दुर्यो०—किसने कहा !

शकुनि—मैने यह बिजलीके अक्षरोमे मेघोकी काली चादरपर लिखा देखा है ?

दुर्यो०—देखा है ?

शकुनि—देखा है ! कुछ डर नही है।

दुर्यो०—अकस्मात् यह उलटी हवा चलने लगी। (प्रस्थान)

शकुनि—मूर्ख ! क्या तुम कुछ भी नही समझते ? ऐसे अंधे हो ! इस युद्धमे कौरवकुल निर्मूल हो जायगा।—इसमे मुझे क्या लाभ होगा ? और कुछ नही—केवल साधारण—अत्यन्त साधारण सन्तोषमात्र।

—यह मेरा स्वभाव ही है कि जिसके घरमे रहता हूँ, जिसका खाता-पीता हूँ, उसीका सर्वनाश करता हूँ। (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुरके राजमहलका अन्तःपुर

समय—सन्ध्याकाल

[अंबिका और अंबालिका गाती है]

गजल

ईश्वर हमारे जीमें यही इतना-सा बल दें।
हम हँसते हुए ऐसे ही इस लोकसे चल दें।
जीवनकी त्रुटि और बुढ़ापेकी भी भ्रकुटी।
पर्वा न हो इनकी, इन्हें चुटकीहीसे मल दें॥
फिर कर भी नहीं देखेंगे हम अपनी तरफको।
दुःखको न मँझाएँ, उसे पैरोंसे कुचल दें॥
हम पाएँ न पाएँ, न हो चिन्ता कुछ इसका।
दुखियोंपे दया करके उन्हें चैन दें, कल दें॥

अंबि०—अच्छा गाना है।

अंबालि०—बहुत अच्छा है!

अंबि०—अच्छा, अब हम गाना गाती किस हिसाबसे है?

अंबालि०—क्यो! विधवा होनेसे क्या गाना भी न गाना चाहिए?

अंबि०—लेकिन अब तो तू बूढ़ी हो गई है!

अंबालि०—कबसे!

अंबि०—सो तो नहीं जानती, मगर बूढ़ी हो गई है!

अंबालि०—यह कैसे!—बूढ़ी हो गई, और मालूम न पड़ा! यह तो बड़ी ही भयानक अवस्था है।

अंबि०—तेरे सब बाल पक गये है !

अबालि०—पक जाने दो । मन तो नहीं पका—वह तो वैसा ही बना है ।

अंबि०—सो तो सच है बहन । हमारी दृष्टिमे पृथ्वी वैसी ही नई है और जीवन भी अभीतक एक मधुमय मधुर स्वप्न है ।

अंबालि०—वह इतना मधुर है कि वैधव्य भी उस स्वप्नको उचटा नही सका—मृत्युने भी प्राणभयसे उस स्वप्नको उचटाना नही चाहा !

अंबि०—और सासजी—यद्यपि बाहर वही चौदह बरसकी बालिका बनी है—मगर भीतरसे बुढ़ा गई है ।

अबालि०—मन-ही-मन न जाने क्या सोचा करती है और आप ही आप न जाने क्या बड़-बड़ किया करती है।

अंबि०—वे—वे—और कुछ नहीं, भीष्म-तर्पण करती हैं ।

[सत्यवतीका प्रवेश]

सत्य०—अंबिका !

अंबि०—(आगे बढ़कर) क्या है मा !

सत्य०—तुम दोनो-जनी यहाँ हो ?

अबालि०—(आगे बढ़कर) ठीक अनुमान किया तुमने मा । हम यहाँ है ।

सत्य०—यहाँ दोनो जनी क्या करती हो ?

अंबि०—लड़कपन कर रही है ।

अंबालि०—और यह सोच रही हैं कि तुम दिनरात मुँह लटकाये सोचा क्यो करती हो मा ।

सत्य०—मै सोचती क्यो हूँ ?—तुम नही सोचती ?

अंबालि०—कहाँ ! कुछ तो नही जान पड़ता ।—अच्छा दीदी, तुझे जान पड़ता है ?

अंबि०—नहीं तो।—अच्छा, हम सोचे क्यों मा?

सत्य०—सोचे क्यों!—कौरव और पाण्डवोंमे महायुद्ध ठन गया है। तुममेंसे एकके पोते दूसरीके पोतोंसे जानकी बाजी लगाकर लड़ रहे है और तुम इसमें सोचनेकी कुछ बात ही नहीं पातीं?

अंबि०—कहाँ? नहीं तो! अंबालिका, तूने इसमे कुछ सोचनेकी बात पाई?

अंबालि०—कहाँ! कुछ समझमे तो नही आता।

सत्य०—तुम लोग अपने मनमें अपने अपने पोतोंके जीतनेकी कामना नही करतीं?

अंबिका और अंबालिका—कहाँ! याद तो नहीं आता।

सत्य०—अच्छा, अब तो तुम्हारी समझमे आया कि तुम्हारे पोतोंमे भयानक युद्ध हो रहा है?

दोनो—हाँ, समझमे आया।

सत्य०—इस युद्धमे तुम किस पक्षकी जीत चाहती हो?

दोनो—दोनों पक्षकी।

सत्य०—दुर्! कहीं दोनों पक्षकी जीत हो सकती है?

अंबि०—क्यो न होगी?

अंबालि०—बताओ?

सत्य०—इस युद्धमें या तो पाण्डव निर्मूल हो जायेंगे या कौरव। इसके लिए तुम्हे कुछ भी चिन्ता नहीं होती?

अंबि०—कहाँ! तुझे होती है बहन?

अंबालि०—बिल्कुल नही!

अंबि०—जो होना है वह होगा।—क्यो बहन?

अंबालि०—सोच करके, चिन्ता करके, क्या होगा।—क्या कहती हो !

सत्य०—शायद दोनो ही कुल निर्मूल हो जायँगे।

अंबि०—यह भी हो सकता है।—क्यो बहन ?

अंबालि०—क्यो नही।

सत्य०—और मृत्युके सहचर कृष्णवर्ण प्रेत अपने लंबे पैरोसे रणभूमिकी उस दुर्गन्धदूपित वायुमे विचरण करेंगे।

अंबि०—समझमे नही आया।—बहन, तूने कुछ समझा ?

अंबालि०—कुछ नही! बहुत अधिक कठिन संस्कृतमे कहा है।

सत्य०—मगर तुम दोनो अपने मनमे किस पक्षकी जय चाहती हो ?

अंबि०—दोनो पक्षोकी जीत नही होती ?

सत्य०—ना। जीत एक ही पक्षकी होती है।

अंबालि०—बाजी बराबर नही रहती ?

सत्य०—ना।

अंबि०—तो अंबालिकाके पोतोकी जय हो।

सत्य०—यह क्या! अगर पाण्डव कुलका विनाश हुआ—

अम्बि०—तो अम्बालिका रोवेगी।

अम्बालि०—हिश्!

सत्य०—और अगर इस युद्धमे कौरव-कुलका विनाश हुआ—

अम्बालि०—तो अम्बिका रोवेगी।

अम्बि०—जाने भी दो, इन बातोको।

सत्य०—और—और अगर दोनो कुलोका विनाश हुआ—

अम्बिका—मा, जीवनके बुरे पहलूपर ही विचार करके क्यो वृथा कष्ट पा रही हो ?

अम्बालिका—जब रोना होगा, रोया जायगा। इसके लिए अभीसे चिन्ता क्यो करती हो ?

अम्बिका—संसारमे दुःख तुम्हे पकडनेके लिए घूम रहा है। उसे धोखा दो—उससे बचो।

अम्बालिका—बस, धोखा दो।

अम्बिका—और अगर दुःख तुम्हारे ऊपर आकर गिर पडे—

अम्बालिका—तो उसे हँसकर उडा दो।

अम्बिका—जहाँ तक हो सके—

अम्बालिका—बस।

अंबिका—यह देख बहन, कबूतरोका एक झुंड उडा जा रहा है—देख–देख–देख !

अम्बालिका—वाह वाह ! (दोनोका प्रस्थान)

सत्य०—यह हृदयका सुन्दर अनन्त यौवन व्याधिकी टेढी भौहोको नहीं डरता—उसे बन्दी बना लेता है, बुढापेकी लूटसे सुलह कर लेता है, भयको सुला देता है और विश्वमें एक आनन्दमय सगीत व्याप्त कर देता है।—इसके आगे यह अनन्त यौवन क्या चीज है !—न झुकी हुई पीठ, अशिथिल शरीर, सुदृढ दन्तावली, न पके हुए बाल—क्या करेगे, जब यह हृदय ही मसानकी तरह निरानन्द हो रहा है !—बडा अच्छा वर दिया ऋषिवर !—जो विषधर सर्पकी तरह मुझे घेरे हुए है। अपना वर फेर लो और मुझे इस अनन्त यौवनके कारागारसे छुटकारा दे दो। यह अन्तःसाररहित जीर्ण रम्य महल टूटकर गिर जाय, चूर-चूर हो जाय। रूपका यह व्यग अभिनय समाप्त कर दो ! (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[कृष्ण अकेले खड़े गा रहे है]

गजल

क्यों आज आती याद वृन्दावन-निकुंज-वहारकी ।
निर्जन किनारे फिर वही वातें है क्यों सुख-प्यारकी ॥
यमुना किनारे वह हवा खाना टहलना हर घड़ी ।
होना मगन वह फूल-गंधोंमें गुँधावट हारकी ॥
शुभ शरदकी शुचि चाँदनीमें चुपके तकना राह वह ।
रक्खी अधरपर बाँसुरी, भीतर हँसी वह प्यारकी ॥
वह नील चल जलराशिका कलरव कलिंदी-कूलमें ।
वह ग्वालवालों संग लीला ललित वाल-विहारकी ॥
वह सब करूँ मै आज अनुभव—दूरपर ज्यों सुन पड़े ।
वह किसीके नूपुरोंकी धुनि औ वाणी प्यारकी ॥

[युधिष्ठिर आदि पाण्डवोका प्रवेश]

कृष्ण— क्यो धर्मराज, रातको मेरे पास दलवलसहित आकर क्यो उपस्थित हुए हो ? आप भी नही सोओगे—और, और किसीको भी न सोने दोगे ।

युधि०—तुम सो रहे थे क्या वासुदेव ?

कृष्ण—मालूम नही, सो रहा था या नही !—लेकिन स्वप्न जरूर देख रहा था । कैसा मधुर स्वप्न था !—उचट गया !—खैर जाने दो । मालूम पडता है, कोई नई खबर जरूर है ।

युधि०—खबर तो कोई नही है ।

कृष्ण—तो फिर ?

युधि०—एक सलाह करने आया हूँ ।

कृष्ण—रातको ?

युधि०—आपका उपदेश चाहता हूँ।

कृष्ण—उपदेश चाहते हो!—किस बारेमे? उपदेश तो मै खूब दे सकता हूँ।

युधि०—अकेले पितामह भीष्मके हाथसे पाण्डव-पक्षकी सारी सेना नष्ट हुई जा रही है वासुदेव!

कृष्ण—तुम्हारा यह कहना तो सच है कि पाण्डव-पक्षकी सेना नित्य कम होती चली जा रही है।

युधि०—इस युद्धमे हम लोगोके जीतनेकी आशा नही है।

कृष्ण—इस समयकी दशा देखकर तो ऐसा ही जान पडता है।

भीम—अन्तको तुम भी यह बात कहने लगे वासुदेव!

कृष्ण—कहूँ न तो क्या करूँ? तुम तो बडे भारी वीर हो न? कहाँ है वह तुम्हारी गदा? क्यो, चुप क्यो हो! गदाधर, दुःशासनका रक्त नहीं पियोगे? पियो।—और अर्जुन, तुम तो खाण्डव-दाह कर चुके हो! विराटके यहाँ युद्धमे सबको हरा चुके हो! और भी न जाने क्या क्या कर चुके हो! तुम्हारा गाण्डीव धनुष क्या सो रहा है?

भीम—इस समय इस तरहकी हँसी अच्छी नहीं लगती वासुदेव।

कृष्ण—कामकी दिल्लगी हर समय नही सूझती भैया।—क्यों भाई नकुल और सहदेव, एक कोनेमे बैठे आँखे फाड़फाडकर मेरी ओर क्या ताक रहे हो!

युधि०—मित्र, अब यह बताओ कि इसका उपाय क्या है? उपदेश दो कि क्या करना चाहिए।

कृष्ण—यही तो सोच रहा हूँ।—सहदेव, मेरी बाँसुरी तो दो।

युधि०—बाँसुरीका क्या करोगे?

कृष्ण—बहुत दिनोसे बजाई नहीं। जरा ले तो आओ।

युधि०—सो इस समय—

कृष्ण—जरा मनको स्थिर करने दो।

(कृष्ण बशी लेकर बजाते है)

नकुल—आपने तो बॉसुरी बजाना शुरू कर दिया।

सहदेव—इस मामलेके साथ बॉसुरी बजानेका तो कोई सम्बन्ध नही देख पडता।

कृष्ण—(बशी रखकर गम्भीर भावसे) युधिष्ठिर, भीष्मके जीतेजी तो इस पक्षके जीतनेकी आशा नही की जा सकती। तो मै द्वारकापुरीको लौट जाऊँ।

सहदेव—वाह भैया वाह ! लडाई ठनवाकर यह खिसक जानेकी तैयारी खूब की !

नकुल—इसीको कहते है—पेड़पर चढ़ाकर सीढी हटा लेना।

युधि०—कृष्ण, इस घोर विपत्तिमे हमे तुम्हारा ही एक भरोसा है।

कृष्ण—मै क्या करूँ ? मै तो प्रतिज्ञा कर आया हूँ कि इस युद्धमे शस्त्र ग्रहण नही करूँगा। मेरी सब नारायणी सेना शत्रुओके पक्षमे है और अर्जुन मन लगाकर युद्ध नही करते। मै क्या करूँ ?

युधि०—अर्जुन मन लगाकर युद्ध नही करते ?

कृष्ण—नही, युद्धभूमिमे मैने केवल सारथिका काम करनेका वादा किया है। लेकिन मै उससे बहुत अधिक काम करता हूँ।

भीम—क्या करते हो ? खाक करते हो।

कृष्ण—नही करता ! युद्धके प्रारम्भमे ही युद्धभूमिमे मैने तीन घंटे तक अर्जुनको कर्त्तव्यका उपदेश किया है,—यद्यपि उपदेश देनेका कोई ठहराव नही था। लेकिन उतना सब उपदेश बेकार ही गया। अर्जुनमे जैसे जान ही नही है—जैसे हाथ-पैर ठंडे हो रहे है। बाण मारते है—और

साथ ही साथ अफीमचींके ऐसी जँभाइयाँ लेते हैं। नहीं तो अगर अर्जुन जी लगाकर युद्ध करे—देवराजसे अस्त्र-शिक्षा और शंकरसे पाशुपत अस्त्र पानेवाले, अस्त्र-शिक्षाके ब्रह्मचारी अर्जुन अगर ध्यान दे —तो जय हाथमे है।—लेकिन अगर वे युद्ध-क्षेत्रमें बाहु-युद्ध छोड कर वाग्युद्ध करे, तो भाई, मुझे विदा कर दो।

युधि०—अर्जुन, भाई, तुम जी लगाकर युद्ध नही करते ?

अर्जुन—मै क्या करूँ दादा ! भाई-बन्धु-गुरुजनोके मारनेको मेरा हाथ ही नही उठता, हृदय विषादसे शिथिल हो जाता है। मै क्या करूँ दादा !

कृष्ण—हाथ चलाओ। हृदयको दृढ करो।

युधि०—(कातर भावसे) अर्जुन !—

कृष्ण—और अर्जुन ही क्या करें ! युद्धके प्रारभमे तुमने ही तर्क करके इनके उत्साहको ठंडा कर दिया ! जाति-वध, जाति-वध चिल्ला-कर नाकमे दम कर दिया ! जिसे जो मिलना चाहिए, जिसके प्रति जिसका जो कर्त्तव्य है, मैं बता दूँगा। विचार करनेवाले तुम लोग कौन हो ? अर्जुन अगर मनपर धरे, तो भीष्म-वध तो बहुत ही सहज साधारण बात है।

अर्जुन—भीष्म पितामह तो इच्छा-मृत्यु है। बिना उनकी इच्छाके उनकी मृत्यु हो ही नहीं सकती।

कृष्ण—तो फिर बस, मजेमे नींदके खर्राटे लो।—बहस मत करो अर्जुन। अपना कर्त्तव्य करो—क्षत्रियके धर्मका पालन करो। और सब भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

युधि०—(अनुनयके स्वरमें) अर्जुन !

अर्जुन—अच्छा दादा, वही करूँगा।

कृष्ण—भीष्मकी इच्छा-मृत्युका बदोबस्त मैं करता हूँ। युधिष्ठिर, तुम्हे एक काम करना होगा—अच्छा, क्या करना होगा, सो फिर बताऊँगा। इस समय तुम सब लोग जाओ।

(कृष्णके सिवा सबका प्रस्थान)

(कृष्ण फिर बंशी बजाने लगते है।)

[व्यासका प्रवेश]

कृष्ण—कौन? ऋषिवर व्यास है?—चरणोमे प्रणाम करता हूँ।

व्यास—तुम धन्य हो परमेश्वर! कौन किसके चरणोमे प्रणाम करता है? प्रभो, तुम्हारी लीलाको समझना कठिन है।

कृष्ण—(प्रणाम करते हैं)

व्यास—प्रतारणा! प्रतारणा! नित्य प्रतारणा! देव नारायण! यह तुम क्या करते हो! दूर भविष्यकालमे अगर अबोध मानव तुम्हारे पदांकका अनुसरण करेगे, तो यह पृथ्वी प्रतारणा-जालसे ढक जायगी।

कृष्ण—सावधान मनुष्य! तुम ससीम मनुष्य हो, और ईश्वर असीम है। दोनोका धर्म भिन्न है। मनुष्य, तुम क्या जानते हो कि मैं विश्वमे प्रतिदिन मनुष्य-पतंग-कीट-आदिकी कितनी हत्याएँ करता हूँ? भेड-बकरी सिंह आदि हिंस्र पशुओका आहार है, मेढ़क सर्पका भोजन है, कीड़े पतंगे छिपकली आदिके भक्ष्य है। जीव ही जीवका जीवन है। इस ब्रह्माण्डमे आत्मरक्षाके लिए नित्य घोर संग्राम चल रहा है।—यही ईश्वरका कार्य है।

व्यास—क्यो?

कृष्ण—सावधान! वह महान् उद्देश्य मनुष्यके लिए दुर्बोध है—मनुष्य उसे नहीं समझ सकता।

व्यास—मनुष्य क्या उससे बाहर है?

कृष्ण—कभी नही। व्यास, इस महासग्राममे अकेला मनुष्य ही स्वार्थत्याग करनेमे समर्थ है। उसके बाहर स्वार्थका पसार है—बाहरके साथ बाहरका युद्ध चला करता है। किन्तु भीतर और एक युद्ध मैने चला रक्खा है—वह अपनी प्रवृत्तिके साथ अपनी ही प्रवृत्तिका युद्ध है। ब्रह्माण्डमे सब कुछ मै ही हूँ, उसका साराश मनुष्य है। इस वृक्षका बीं मनुष्य है, इस पेडका सुकुमार फूल मनुष्य है। व्यास, यह सृष्टि मेरी है। मनुष्य अगर यथार्थ मनुष्य हो, तो वह ईश्वरसे भी बडा हो सकता है।

व्यास—यह कैसे नारायण! ईश्वरसे बडा मनुष्य हो सकता है!!!

कृष्ण—निश्चय हो सकता है, अगर वह मनुष्य यथार्थ मनुष्य हो।

व्यास—यह क्या भगवान् कृष्ण! तुम्हारी ऑखोमे आँसू और होठोपर हॅसी क्यो है?

कृष्ण—सुनोगे महर्षि व्यास, बॉसुरी बजाऊँ? (अत्यधिक द्रावक स्वरमे वशी बजाते है।)

चौथा दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्र

समय—रात

[भीष्म अकेले खड़े है]

भीष्म—यह शून्य जीवन अब अच्छा नही लगता। दिनो दिन आयु क्षीण होती चली आ रही है। सहचर, बन्धु, अनुचर आदिको एक एक करके समय-समुद्रके जलमे डूबते देखा है। और मै समयके प्रवाहमे शिथिलताके बोझसे दबे हुए, विगत-वैभव, शीर्ण ‘अन्त’को लिए वह रहा हूँ।—जीवनके कामोकी रगभूमिपर धीरे धीरे अन्धकार फैलता चला आ रहा है। वर्फसे ढके हुए हिमाचलके समान जीवनके

शिखरपर खडे होकर अतीत कालके शिखरकी उपत्यका-भूमिको देख रहा हूँ।—यह रूखा शून्य जीवन अब अच्छा नही लगता।

[गान्धारी और कुन्तीका प्रवेश]

भीष्म—कौन? कुन्ती!

(दोनो प्रणाम करती हैं)

भीष्म—क्या खबर है कुन्ती, पाण्डवोकी कुशल तो है?

कुन्ती—यथासंभव कुशल है। किन्तु आज मेरे पुत्र उत्साह-हीन, भयसे व्याकुल, म्रियमाण, और निर्जीव हो रहे है।

भीष्म—सो क्यो बेटी?

कुन्ती—युधिष्ठिरने जयकी आशा छोड़ दी हैं। वह फिर वन जानेके लिए तैयार है।

भीष्म—क्यो? स्वयं श्रीकृष्ण जिसके पक्षमे है, उसे काहेका भय है कुन्ती? कितने ही ऋषि-मुनि जिनके चरण-कमलोका ध्यान करके भी जिन्हे नही पाते, वे श्रीकृष्ण जिसके स्नेहके बन्धनमे बँधे हुए है, उसको जयकी आशा नही है?

कुन्ती—कैसे जय होगी देव? इस नौ दिनके युद्धमे ही पाण्डव-पक्षकी सेना आधी रह गई है, और जो बची है वह भी कातर जर्जर हो रही है। यह सेना आपके तीक्ष्ण बाणोकी चोटके आगे और कितने दिन टिक सकेगी? हम लोग युद्धमें जय नही चाहते, फिर वनको चले जाते है। इसीसे मै बहन गान्धारीसे भेट करने आई थी।

भीष्म—किन्तु तुम्हारा पुत्र अर्जुन तो महावीर है?

कुन्ती—अर्जुनके ऐसे संसारके सैकडो वीर भी अकेले भीष्मके बराबर नही हो सकते। अकेला अर्जुन क्या कर सकता है?

गान्धारी—देव, आप बड़े बुद्धिमान् है। आप दुर्योधनका पक्ष छोड दीजिए।

भीष्म—सो कैसे गान्धारी ?

गान्धारी—मै जानती हूँ, आप कौरवोके पितामह है। लेकिन पाण्डवोके भी तो पितामह है। संग्राममे एक पोतेका पक्ष लेकर दूसरे पोतेसे शस्त्र-युद्ध करना भीष्मको नही सोहता। आप दुर्योधनका पक्ष छोड दीजिए।

भीष्म—यह मुझसे नहीं हो सकता गान्धारी। दुर्योधन राजा है और मै प्रजा हूँ। राजाकी विपत्तिके समय रक्षा करना प्रत्येक प्रजाका कर्तव्य है।

गान्धारी—दुर्योधन राजा नही है। वह दूसरेका हक छीननेवाला डाकू है। दूसरोकी सम्पत्ति छीनकर राजाकी-उपाधि लेकर सिंहासनपर बैठ जानेसे ही कोई राजा नही हो सकता देव ?

भीष्म—यह क्या कह रही हो गान्धारी, दुर्योधन तुम्हारा बेटा है।

गान्धारी—हॉ दुर्योधन मेरा बेटा है।—पिता, आप जानते हैं कि माताके लिए पुत्र कैसी चीज है ? वह उसके शरीरकी शक्ति, ऑखोंकी ज्योति, अन्धेकी लकडी, रोगीकी दवा, मरते हुएका राम-नाम है। वह उसकी जीवन-मरुभूमिका झरना है, संसार-सागर तरनेकी नाव है, इस जन्मका सर्वस्व है, दूसरे लोककी आशा है, जन्म-जन्मान्तरकी पुण्य-राशि है। वह उसके लिए यन्त्रणाके समय सुखकी नींद है, शोकके समय सान्त्वना है, दीनावस्थामे भिक्षा है, निराशाके समय धैर्य है।—दुर्योधन मेरा बेटा है। किन्तु जब वही बेटा न्याय, सत्य, विवेक और धर्मके विरुद्ध है, तब वह मेरा कोई नहीं है। जब वह बेटा पापके सिंहासनपर बैठकर—अन्यायका राजदण्ड हाथमे लेकर, जगत्मे दुर्नीतिके शासनको दृढ करता है—तब वह मेरा कोई नहीं है। जब

वह पुत्र राज्यमे अशान्ति, अराजकता, उच्छृंखल अत्याचार बढ़ाता है, तब जी चाहता है—क्या कहूँ पिता—तब जी चाहता है कि मै आत्महत्या कर लूँ; तब पछतावा आता है कि बचपनमे उसे विष देकर क्यो नही मार डाला।—पिता, मै दुर्योधनकी जननी हूँ, मै कहती हूँ कि आप दुर्योधनका साथ छोड़ दीजिए।

भीष्म—लेकिन गान्धारी, मैने उसका अन्न खाया है।

गान्धारी—इतनी नम्रता! यह साम्राज्य दुर्योधनका नही है, दुर्योधनके पिताका नहीं है, यह साम्राज्य भीष्मका है। दुर्योधनका अन्न आपने खाया है? ना, दुर्योधन ही आजतक आपकी कृपासे प्राप्त अन्न खाता आ रहा है।—और अगर आपहीका कहना ठीक हो तो अगर अन्नदाता हत्या करनेके लिए कहे, तो क्या आप वही करेगे?

भीष्म—यह हत्या है?

गान्धारी—हाँ, यह हत्या है और यह एक हत्या नही है, हजारो हत्याओका ढेर है। युद्ध नाम दे देनेहीसे क्या हत्या हत्या नहीं रहेगी महाराज? पाण्डुके पुत्रोंने गुजारेके लिए सिर्फ पाँच गाँव माँगे थे। मदान्ध दुर्योधनने उत्तर दिया कि "विना युद्धके सुईकी नोक भर भूमि भी नहीं दूँगा।" और उसी दर्पपूर्ण स्वेच्छाचारको धर्मवीर भीष्म अपने बाहुबलसे प्रचार कर रहे हैं।

भीष्म—गान्धारी, समझता हूँ कि यह अन्याय है। लेकिन विपत्तिके समय मै राजाका साथ न छोड सकूँगा। भीष्म अपनी जिन्दगीमे कृतघ्न नहीं बन सकता।

गान्धारी—कुन्ती! बहन!—यह जंगलका रोना है। भीष्मदेव बडे ही राजभक्त है! कर्त्तव्यके लिए माता पुत्रको छोड सकती है, मगर भीष्मदेव राजाको नहीं छोड़ सकते। चलो बहन! (जाना चाहती है)

भीष्म—ठहरो।

(दोनों ठहर जाती हैं)

भीष्म—ना, जाओ।

(गान्धारी और कुती चली जाती हैं। भीष्म पितामह वहीं टहलते हैं।)

भीष्म—तो फिर वही हो। यद्यपि आत्महत्या करना पाप है, किन्तु मै उस पापको करूँगा—इस धरातलपर धर्म-राज्य स्थापित करनेके लिए नरक जाऊँगा। यह सच है कि मै अधर्मके पक्षमें हूँ, तथापि—तथापि—राजभक्ति, कृतज्ञता,—दोनोका पितामह हूँ—बडी मुश्किल है!—और यह महा अन्याय है कि मै इच्छा-मृत्यु हूँ—किन्तु इस तरह अपनी मौत बुलाना क्या आत्महत्या नही है? यदि है, तो वही हो।—अरे वह कौन है। वह छायारूपी कौन है?

छाया-मूर्ति—मै हूँ प्रतिहिंसा—

भीष्म—प्रतिहिंसा!

छाया-मू०—भीष्म, कल तुम्हारे रुधिरसे मेरी प्रतिहिंसा पूरी होगी।

भीष्म—सो कैसे? कहाँ जाती हो? मेरी मौतका हाल कहो। कहो।

छा० मू०—कल फिर कुरुक्षेत्रकी समरभूमिमे मुझे देखोगे।

(गायब हो जाती है)

भीष्म—मूर्ति अन्धकारमे जाकर लीन हो गई। आश्चर्य है! अच्छी बात है। अब कुछ दुविधा नहीं है?

[कौरवोंका प्रवेश]

दुर्यो०—पितामह!

भीष्म—(चौककर) कौन?—कौरव? क्या खबर है?

दुर्यो०—पितामह, तुम्हारा पराक्रम धन्य है। पाण्डव रणभूमि छोड़-कर भाग रहे है। वह उनके भागनेका शोर-गुल सुन पड रहा है।

भीष्म—बेटा, यह भागनेका शोर-गुल नही है, किन्तु पाण्डवोका उल्लासपूर्ण उत्सव-कोलाहल है।

दुःशासन—उत्सव-कोलाहल है !

भीष्म—वह दसवे दिन रणमे भीष्मके गिरनेकी सूचना दे रहा है!

दुर्योधन—रणमे भीष्मका गिरना ?

भीष्म—दुर्योधन, बेटा, आज आखरी दफा कहता हूँ—लडाई बंद कर दो। अब भी समय है। नही तो निश्चय इस युद्धमे कौरव-कुल निर्मूल हो जायगा।

शकुनि—भीष्मका कहना कभी झूठ नही होता।

दुःशासन—मामा !

शकुनि—विजय-लक्ष्मी बडी ही चचल है।

भीष्म—बेटा, अन्तिम बार कहता हूँ—लडाई बद कर दो।

दुर्योधन—कभी नही। पितामह, ये प्राण दे दूँगा, मगर कौरवोकी मर्यादा नही मिटने दूँगा।

भीष्म—तो फिर यह होनी है ! दैवकी इच्छा है !—मै एक साधारण मनुष्य क्या कर सकता हूँ ! परन्तु मै दूर भविष्यमे देख रहा हूँ कि जो भ्रातृ-द्रोहकी आग आज कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमे जली है, वह किसी समय सारे भारतको छा लेगी और रावणकी चिताके समान युग-युग तक, अनन्त समय तक, जलती रहेगी। यह निश्चय जानो।

शकुनि—भीष्मका कहा कभी झूठा नही होता।

भीष्म—अपने घर लौट जाओ और सुखसे सोओ।

(कौरवोका सिर झुकाये हुए उदासभावसे प्रस्थान)

भीष्म—मै कुछ दिनोसे अपने आसपास मौतकी छाया देखता हूँ। आज वह द्वारपर आकर उपस्थित हुई थी। उसकी गभीर आह्वान-वाणी मैने सुनी है।

[व्यासके साथ श्रीकृष्णका प्रवेश]

कृष्ण—भीष्म !

भीष्म—यह क्या ! वासुदेव, चरणोमे प्रणाम करता हूँ !—ऋषिवर, चरणोमे प्रणाम करता हूँ ।

व्यास—स्वस्ति ।

कृष्ण—समझे, मै इतनी रातको तुम्हारे पडावमे क्यो आया हूँ भीष्म ?

भीष्म—समझ गया देव, तुम लीलामय अन्तर्यामी भगवान् हो । आशीर्वाद दो कि यह आत्महत्याका पाप तुम्हारी इच्छासे धो जाय ।

कृष्ण—ऑख उठाकर देखो व्यास, क्या कभी इतना बडा त्याग और देखा है ?—ऐसा निःस्वार्थ जीवन !

व्यास—देवव्रत ! देवव्रत ! क्या यह भी संभव है ? धन्य भाई, तुम धन्य हो ! मै व्यास भी धन्य हूँ—जो तुम्हारा गुरु हूँ। देवव्रत, आज शिष्यके आगे गुरुको हार माननी पडी ।

कृष्ण—मैने कहा था व्यास—मनुष्य ईश्वरसे भी बडा है—अगर वह मनुष्य हो ।—भीष्म, मैं निर्विकार हूँ ! मगर इश्वर देखो, तो भी मेरी ऑखोमे ऑसू भर आये है ।—भक्त ! पुरुषोत्तम ! पुण्यश्लोक ! महाभाग ! योगी ! वीरवर ! त्यागके आदर्श ! तुम्हे पाप स्पर्श करेगा ? उसकी मजाल है ?—देखो, पृथ्वीभरका पाप तुम्हारी महिमासे तुम्हारे पैरोके तले पडा हुआ गला जा रहा है ।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—रणभूमिका मैदान

समय—प्रदोषकाल

(कृष्ण, अर्जुन, और शिखण्डी)

कृष्ण—क्या देखते हो अर्जुन ! समर-भूमिमे विस्मयसे अवाक् होकर क्यो खड़े हो ! वीर, रथपर चढ़ो और युद्ध करो ।

अर्जुन—कैसा आश्चर्य है ! यह देखते हो वासुदेव—

कृष्ण—क्या ?

अर्जुन—वासुदेव, क्या तुमने कभी ऐसा युद्ध देखा है ? वह देखो, भीष्मके धनुपसे छूटे हुए वाणोने प्रलयके बादलोके समान आकर सूर्यके किरण-जालको ढँक लिया है । वह देखो, बिजलीके समान तरवारकी चमक देख पड़ती है । अकेले भीष्म सौ भीष्मके समान युद्ध कर रहे है—शत्रुओके हृदय मे वज्रसदृश वाण मार रहे है। चारो ओरसे हजारो योद्धा आकर घेरते है—लेकिन पल भरमे भीष्मके वाणोसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीतलपर गिर पड़ते है । वे अनेक जुझाऊ वाजे बज रहे है, रणका कोलाहल छा रहा है, मृत्युका आर्त्तनाद उठ रहा है—साथ ही घोडोका हिनहिनाना और हाथियोकी चिंघार सुन पड रही है; लेकिन भीष्मके धनुष्यकी टकार सब शब्दोंके ऊपर गूँज रही है। मैने तो कभी भीष्मको भी ऐसा युद्ध करते नहीं देखा ।

कृष्ण—सचमुच यह बड़ा आश्चर्य देख पड रहा है अर्जुन ?

अर्जुन—वह देखो, पाण्डवोकी सेना भाग रही है । उसके पीछे अकेले भीष्म, मेघके पीछे उन्मत्त वायुके समान, अपना रथ दौड़ाते जा रहे हैं। उत्साहसे उनकी छाती फूलकर दूनी हो रही है, दृढ मुट्ठीसे धनुष

पकड़े हुए है, पैर जमाये हुए है, वृद्ध शरीरसे तेजीके साथ पसीना बह रहा है, होठसे होठ चबा रहे है—उनमे मृत्युका प्रत्यक्ष रूप दिखाई पड़ रहा है, ऑखोमे प्रलयकी ज्वाला झलक रही है ।—ये वृद्ध भीष्म है—या साक्षात् वज्रपाणि इन्द्र है ? धन्य पितामह ! धन्य भीष्म ! धन्य वीर ! ऐसा युद्ध—कैसा उल्लास है ! जान पड़ता है, आजके भीष्म पहलेके भीष्मसे भी विक्रममे बढ़ गये है ।

नेपथ्यमे—भागो ! भागो !

[धनुष्यबाण हाथमे लिये युधिष्ठिरका प्रवेश]

युधि०—अर्जुन, तुम यहॉ खड़े हो !

कृष्ण—कुछ कहो मत,—अर्जुन समरके दृश्यको बहुत अच्छी तरह देख रहे है ।

युधि०—अर्जुन ! अर्जुन !

अर्जुन—(चौककर) दादा !

युधि०—यहॉ किस लिए खड़े हो ?

अर्जुन—दमभर विश्राम करनेके लिए ।

युधि०—उधर पाण्डवोकी सेनाका संहार हुआ जा रहा है !

नेपथ्यमे—भागो ! भागो !

युधि०—वह आर्त्तनाद सुनो !—उधर देखो, वीर भीष्म पितामह रथके पहियोकी घरघराहटसे शत्रुओके हृदय कॅपाते हुए विजयके उल्लाससे बिजलीकी तरह इधर ही आ रहे है । अर्जुन, युद्धके लिए आगे बढ़ो ।

अर्जुन—अभी युद्ध करने जाता हूॅ । कोई डर नही है ।

कृष्ण—ऑखे खुली अर्जुन ?

अर्जुन—तो फिर आज भीष्म और अर्जुनके महासमरसे प्रलय होगा । सारथि, रथ चलाओ ।

कृष्ण—शिखण्डी, तुम अर्जुनके आगे रहना !

दृश्य परिवर्तन

स्थान—युद्ध-भूमिका एक हिस्सा

[युद्धके वेषमे भीष्म उपस्थित हैं]

भीष्म—ये तो शिखण्डीके वाण नही है ! ये तो अर्जुनके वाण है, जो मेरे हृदयमे वज्रके समान लगते है ।—अर्जुन, जितने वाण मारे जा सके, उतने मार लो । मै अपनी छाती खोले खड़ा हूँ । वस, आज सब समाप्त है ।—सारथि, रथको समर-भूमिके बीचमे ले चलो । भीष्म सबके सामने ही युद्ध-भूमिमे गिरेगा । सब जगत् देखे ।

छट्ठा दृश्य

स्थान—कौरवोका अन्तःपुर

समय—सन्ध्याकाल

[अंबिका और अंबालिका टहल-टहलकर बाते कर रही हैं]

अंबि०—दस दिनसे लगातार युद्ध हो रहा है—तो भी विजय लक्ष्मी चुपचाप अलग बैठी है !

अंबालि०—जान पड़ता है, सो रही है ।

अंबि०—सपना देख रही है ।

अंबालि०—खर्राटे ले रही है ।

अंबि०—भीष्म युद्ध कर रहे है ?

अंबालि०—और नही तो क्या कर रहे है ?

अंबि०—दस दिनसे लगातार युद्ध कर रहे है ?

अंबालि०—लगातार युद्ध कर रहे है ।

अंबि०—इन बूढे बाबाको अमर पाकर ये लोग उन्हे बहुत ही अधिक जोत रहे है ।

अंबालि०—'अमर पाकर' कैसे ? भीष्म क्या अमर है ?

अंबि०—अमर तो है ही ।

अंबालि०—या इच्छा-मृत्यु है ?

अंबि०—एक ही बात है। इच्छा करके कौन मरना चाहता है?

अंबालि०—सच दीदी, इच्छा करके कौन इस दुनियाको छोड़ना चाहता है ?—यह दुनिया ऐसी ही मनोहर है !

(विह्वल भावसे गान्धारीका प्रवेश । उनके बाल और वस्त्र अस्तव्यस्त हो रहे हैं)

गान्धारी—सुना मा ?

अंबिका और अंबालिका—क्या बहू ?

गान्धारी—इस दारुण समरमे आज भीष्मका पतन हो गया !

(अंबा और अंबालिका पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़ी रहती हैं ।)

गान्धारी—क्यो मा, चुप क्यो रह गई ? एकटक मेरी ओर ताक रही हो !—जैसे दो पत्थरकी मूर्तियॉ हो !—रोती नहीं हो मा ? अरे तुम चिल्लाकर रोओ और तुम्हारे साथ मै भी रोऊँ । मुझे रुआई नही आती । जैसे कोई गला दबाये हुए है । रोओ मा !

अंबिका—गान्धारी—

गान्धारी—क्या !—रुक क्यो गई ! बात कहो ! रोओ ! क्या हो गया है, सो समझती हो !—फिर भी नही रोती मा ! (अंबालिकासे) क्या ! केवल होठ हिला रही हो ! क्या कहती हो ? और भी चिल्लाकर और भी चिल्लाकर कहो ! इस प्रलयकी ऑधीमे मै कुछ नहीं सुन पाती । और भी चिल्लाकर—और भी चिल्लाकर कहो !

अंबालि०—भीष्मका पतन हो गया ? पृथ्वीपर भीष्म नहीं है ?

गान्धारी—है—युद्धमे शर-शय्यापर पडे हुए उत्तरायण सूर्यकी अपेक्षा कर रहे है। अभी तक मृत्यु उन्हे स्पर्श करनेका साहस नही कर सकी है, दूर खड़ी हुई है। लेकिन उसके बाद क्या होगा ?

अबालि०—उसके बाद क्या होगा ?

गान्धारी—नही जानती। भीष्मकी मृत्युके बाद क्या होगा सो नही जानती। यह आकाश क्या इसी तरह नीला बना रहेगा ? हवा क्या इसी तरह चलेगी ? मनुष्य चलते-फिरते रहेगे, बातचीत करेगे ? और हम !—हम जीती रहेगी ?

अंबि०—क्या हुआ बहन !

अबालि०—क्या हुआ दीदी !

गान्धारी—देव, तुमने यह सुदीर्घ शुष्क शून्य जीवन औरोहीके लिए धारण किया—और आज मेरे भी तो औरोके लिए ! इतना महान् जीवन—इतनी ममता, इतनी शक्ति—सब औरोहीके लिए ! और अपने लिए केवल अक्षय कीर्ति !

अंबि०—यह क्या ! इस दुःखके बोझसे जैसे झुकी जा रही हूँ, जैसे मिट्टीमे मिली जा रही हूँ! कहाँ गया ऋषिका वर—वह हर्ष, वह दीप्ति और वह अन्तःकरणका अनन्त यौवन, जिसके बलसे मैने पति वियोगके दुःखको हँसते हँसते अपने सिरपर ले लिया था, बुढ़ापेपर अब तक अपना दबाव रक्खे हुए थी—सो सब कहाँ गया !—बहन !

अबालि०—मै कभी रोई नही। इसीसे वह दुःखकी रुकी हुई बहिया आज राह पाकर उमड पडी है और जैसे हृदयको चूर-चूर करके बहाए लिये जा रही है दीदी !—

अंबि०—रो, चिल्ला चिल्लाकर रो! दुःख ऑसू बनकर बह जाय—और चीत्कार सर्वत्र व्याप्त हो जाय।

गान्धारी—वह कौन है?

[वृद्धा सत्यवतीका प्रवेश]

सत्य०—अरे! तुम लोग अभी जीती हो?

गान्धारी—ये लो, देवी सत्यवती भी आ गई!—यह क्या घड़ीभरमे ही बुढ़ापेने घेर लिया!—वह अनन्त-यौवना—

सत्य०—कहाँ! क्या कोई नही है!

अंबि०—हम है यहाँ मा!

सत्य०—अंबालिका!

अंबालि०—हाँ मा, मै भी हूँ।

सत्य०—कहाँ, मै तो नही देख पाती।

गान्धारी—यह क्या! अन्धी हो गई!

सत्य०—अंबिका! अंबालिका! तुम कहाँ हो!

दोनो—हम ये तो हैं मा!

सत्य०—हाँ, मा कहकर पुकारो। मा कहकर जोरसे पुकारो! (अपनी छातीपर हाथ रखकर) इसी जगह।—इसी जगह—पुकारो—मा कहकर पुकारो! जैसे उसने पुकारा था। उसने मुझे एक दिन मा कहकर पुकारा था। उसके बाद—

अंबि०—(गान्धारीसे) बहू, माको समझाकर धीरज दो।

गान्धारी—आज सभीकी एक दशा है। कौन किसे समझावे—कौन किसे धीरज दे!

सत्य०—आओ बेटियो, मेरी गोदमे आओ! छातीसे लग जाओ!—तुम कहाँ हो? देख नहीं पाती!—छातीसे लग जाओ! (रोकर)

छातीसे लग जाओ बेटियो, तुम्हे छातीसे लगाकर सो रहूँ। (दोनोको छातीसे लगाकर) कहाँ ! ठंडक तो नही पडती । जली जाती हूँ ! जली जाती हूँ !—ओः !

गान्धारी—मा ?

सत्य०—कौन गान्धारी ? तू अभी है ? जीती है ? अच्छा हुआ। आ, हम सब एक साथ चिल्ला-चिल्लाकर रोवे। एक साथ—एक स्वरसे रोवे। (जोरसे रोने लगती है)
—बेटा ! मेरे प्राणाधिक पुत्र !

(गान्धारीको लिपटाकर मूर्छित हो जाती है)

अम्बिका और अम्बिका—मा ! मा !

गान्धारी—सितारका तार टूट गया—मृत्यु हो गई।

अम्बिका और अम्बिका—मृत्यु हो गई ?

गान्धारी—हाँ, मृत्यु हो गई।

(अम्बालिका और अम्बिका परस्पर एक दूसरेकी ओर ताकने लगतीं हैं।)

सातवाँ दृश्य

स्थान—युद्धभूमिका एक हिस्सा

समय—प्रातःकाल

(अर्जुन और शिखण्डी जा रहे हैं)

शिखडी—युद्धमे भीष्मका पतन हो गया। फिर अर्जुन, तुम इतने विकल क्यो हो रहे हो ? जैसे कोई मोहको प्राप्त हो, उस तरह तुम चल रहे हो—पैर रखते कहीं हो, पडते कहीं है।

अर्जुन—शिखडी, मेरा हृदय बहुत ही दुर्बल हो रहा है। कानोमे वे ही टूटे-फूटे शब्द अबतक गूँज रहे है कि “क्या किया अर्जुन ! जिस छातीपर लेटकर तू सोता था, उसीपर तूने वज्र-सदृश वाण

कैसे मारे ?" पितामहने—जब वृद्ध पितामहने—अपने हृदयमे पोतेको तीक्ष्ण वाण मारते देखा, उन्होने बड़े ही खेद और क्षोभसे धनुपवाण हाथसे रख दिये और अपनी छाती खोलकर आगे कर दी। उस समय मै युद्ध करनेमे उन्मत्त सा हो रहा था, इसीसे इस ओर ध्यान नही दे सका।—अर्जुनके वाणोसे निरस्त्र भीष्मकी हत्या हो गई!

शिखण्डी—कौन कहता है वीर? भीष्मका पतन तो मेरे वाणोसे हुआ है।

अर्जुन—शिखण्डी, पहाड़ जब नीचेसे खोद दिया जाता है, तब उँगली लगानेसे भी वह नीचे गिर पड़ता है।

शिखण्डी—तुम्हारा यह क्षोभ वृथा है। जो होना था, वह हुआ।

अर्जुन—तुमने देखा नहीं कि आज युद्धमे भीष्म किस तरह गिरे? जैसे ज्योतिकी राशि प्रदीप्त मध्याह्न-सूर्य आकाशसे गिर पड़े। सारा विश्व काँप उठा और सहसा आकाशमे प्रलय-कालके ऐसा अन्धकार छा गया। स्वर्गमे देवोका हाहाकार मुझे स्पष्ट सुन पडा। और—(रुँधे हुए कठसे) चलो, पितामहके पास चले।

शिखण्डी—(जाते जाते) अर्जुन, भीष्मके पतनसे आज मेरे हृदयमे ऐसा उल्लास क्यो है? कोई जैसे मेरे कानमे कह रहा है—"आज तुम्हारी प्रतिहिंसा पूर्ण हुई"—यह क्या वात है अर्जुन?

अर्जुन—यह क्या वीर?

शिखण्डी—मै नहीं जाऊँगा, तुम जाओ।

अर्जुन—क्यो वीरवर?

शिखण्डी—मैं नहीं जा सकूँगा।—ना, नहीं जा सकूँगा। तुम जाओ।

(दोनों अलग अलग दो ओरसे जाते हैं)

ऑठवाँ दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्र

[भीष्म शरशय्यापर पडे है। सामने विदुर, द्रोण, कृपाचार्य, कौरव और पाण्डव खडे है।]

द्रोण—पाण्डवो और कौरवो! पुत्रो! आज प्रकाण्ड हत्याकाण्डकी लीला शुरू हो गई। समरमे भीष्मका पतन हो गया! कालके कराल कृष्ण-पटलपर रुधिरके अक्षरोसे पहले भीष्मका नाम लिखो। यह कृष्ण-कराल सूची शीघ्र ही पूर्ण होगी।

विदुर—कोई चिन्ता नहीं है। इस काल-सग्राममे कौरव-पक्षका कोई भी मनुष्य जीता नही रहेगा।

कृष्ण०—भीष्मके पतनने आज इस युद्धके भावी परिणामकी सूचना दे दी।

युधि०—पितामह, बहुत अधिक पीडा हो रही है?

भीष्म—कुछ भी नही।—दुर्योधन!

दुर्यो०—पितामह!

भीष्म—सिर नीचे लटका जा रहा है, तकियेका सहारा लगा दो।

(दुर्योधन बहुत अच्छी तकिया लेकर भीष्मके सिरके नीचे रख देते हैं।)

भीष्म—(उसे हटाकर हँसते हुए) भीष्मके लिए यह तकिया!—अर्जुन! अर्जुन!

(अर्जुन अपना तर्कस भीष्मके सिरके नीचे रख देते हैं।)

भीष्म—अर्जुन भीष्मको पहचानता है!—क्यो अर्जुन!

अर्जुन—(ऑखोमे ऑसू भरकर) पितामह, क्षमा करो। मेरा सिर घूम रहा है; ऑखोके आगे अँधेरा छा रहा है।

भीष्म—ना ना बेटा, तुम धनजय हो। जो मै नही कर सका, वह तुमने किया—तुमने अपने कर्त्तव्यको पूरा किया है।—दुर्योधन, जल—

दुर्यो०—(सोनेके पात्रमे जल लाकर) जल पियो पितामह !

भीष्म—यह जल !—अर्जुन, तुम जल दो।

(अर्जुन गाण्डीव धनुष्यपर वाण चढाकर पृथ्वीमे मारते हैं और उससे पाताल-गगाका जल बाहर निकलकर फुहारेके आकरमे भीष्मके मुखमें गिरता है।)

भीष्म—तृप्त हो गया बेटा!

[उद्भ्रान्त भावसे गान्धारीका प्रवेश। साथमे कुती भी है।]

गान्धारी—पिता! पिता! (पैरोमे लिपट जाती है) कहाँ जाते हो भीष्मदेव ?—इस ससारको कगाल करके कहाँ जाते हो ? इस दीन मनुष्य-लोकमे अन्धकार फैलाकर कहाँ जाते हो ? पिता—जाओ मत। मनुष्य-गौरवके सूर्य ! कौरवोके कल्याण ! मेरे पुत्रोने तुम्हारा आश्रय लिया है। देव ! वे इस विपत्तिके सागरके बीच सकटके तूफानमे तुम्हारा ही मुँह ताक रहे है। उन्हे अकेला छोडकर कहाँ जा रहे हो देव !

भीष्म—धीरज धरो बेटी गान्धारी, तुम्हे क्या यो अधीर होना सोहता है ? तुम्हारे सौ पुत्र है।

गान्धारी—लेकिन ये सौ पुत्र शोक बढानेवाले ही है। पिता, तुम सदासे कौरवोके सहायक हो।—ना ना, जाना नही। उठो, धनुष्य-बाण हाथमे लो और कौरवोके शत्रुओको भस्म कर दो।

भीष्म—शोक मत करो। धर्मकी जय हुई है। गान्धारी, खुशी मनाओ।

गान्धारी—सच कहते हो पिता, धर्मकी जय हुई है—कोई दुःख नही है। विजयके वाजे बजाओ। द्रोणकी वलि दे दो, कर्णकी वलि दे दो, दुर्योधनकी दे दो,—पर धर्मकी जय हो! पिता कोई दुःख नही है।

[गगाका प्रवेश]

गंगा—कहाँ हो बेटा देवव्रत!—वत्स! देवव्रत!

भीष्म—उसी प्रिय परिचित स्वरमे वही वचपनका नाम लेकर—जिस नामसे मेरी माता पुकारती थी—कौन पुकार रहा है?

गंगा—मै वही तेरी माता हूँ बेटा।

भीष्म—चरणोमे प्रणाम करता हूँ। (प्रणाम करना)

भीष्म—पाण्डवो! कौरवो! प्रणाम करो। (सब प्रणाम करते हैं)

गगा—इस अन्याय-युद्धमे किसने मेरे पुत्रकी छातीमे वाण मारे है?

कुन्ती—अन्याय युद्धमे नहीं, न्याय-युद्धमे पितामहका पतन हुआ है।

गंगा—तीनो लोकमे ऐसा वीर आजतक पैदा नही हुआ, जो न्याय-युद्धमे मेरे पुत्रका वध कर सके। मैने ऐसे पुत्रको गर्भमे नहीं धारण किया, जिसे कोई न्याय-युद्धमे मार सके। मेरे पुत्रका वध करनेवाला कौन है, बताओ?

अर्जुन—(आगे बढकर) वह नराधम मै हूँ माता!

गगा—तुम? तुम क्षुद्र वीर? न्याय-युद्धमे तुमने भीष्मको मारा है? यह सभव नहीं है।—मै यह शाप देती हूँ कि जिसने अन्याय-युद्धमे मेरे पुत्रके हृदयमे मृत्यु-वाण मारा है, वह भी अपने पुत्रके शोकसे जले।

भीष्म—यह क्या किया! यह क्या किया!—जननी जाह्नवी! अपना शाप फेर लो।

अर्जुन—ना ना, पितामह। देवी माता जाह्नवी, शाप दो। जितना चाहो, जितना हो सके, शाप दो। पुत्र-शोक तो अत्यत तुच्छ है। जननी, यह दु:ख सौ पुत्र-शोकके समान हृदयको व्यथा पहुँचा रहा है कि मै भीष्मकी हत्या करनेवाला हूँ। शाप दो, जितना हो सके—दु:ख दो। इस महान् दु:खके विराट् अग्निकुडमे मै भस्म हो जाऊँ—पितामह— (कण्ठावरोध हो जाता है)

भीष्म—धैर्य धारण करो बेटा अर्जुन, मुझे किसीने नहीं मारा। मृत्यु मेरी इच्छाके अधीन है।—जननी, जानेकी आज्ञा दो।

गगा—जाओ पुरुषसिंह, अपने लोकको जाओ। वत्स देवव्रत, प्राणाधिक, तुम देवता थे; तुमने पृथ्वीपर देवोके समान ही अनासक्त, निष्कलंक, दुर्जय, उज्ज्वल जीवन व्यतीत किया है। जाओ पुत्र, मेरे चरणोकी रज मस्तकमे लगाकर यह शुभ यात्रा करो।

(गगाका प्रस्थान)

भीष्म—कौरवो और पाण्डवो, रात आ गई है। अन्धकार होता चला आ रहा है।—अपने डेरोपर जाओ। खुले हुए युद्धके मैदानमे शरशय्यापर पड़ा हुआ अकेला मै जागूँगा। डेरोको जाओ। बेटी गान्धारी,—कौरवो पाण्डवोसे जानेके लिए कहो।

गान्धारी—कौरवो और पाण्डवो, चलो।

(भीष्मके पाससे सब चले जाते हैं। अन्धकार घना हो आता है।)

भीष्म—हे करुणामय! मुझे दर्शन दो। जगत्के गुरु कृष्णचन्द्र! तुम ही पापियोके लिए अन्त समयके आश्रय हो। मैं पापी हूँ! मै नराधम हूँ! दर्शन दो। इस जीवन-मरणके सन्धि-स्थलमे, इस भयानक गम्भीर मुहूर्त्तमे, इस संकटमे आकर दर्शन दो।

नाथ ! मै सामने दिगन्तपर्यंत विस्तृत असीम समुद्र देख रहा हूँ—और उसका गम्भीर गर्जन सुन रहा हूँ। दयामय हरि ! दर्शन दो—दर्शन दो।

(श्रीकृष्णका प्रकट होना)

कृष्ण—मै यहीं हूँ देवव्रत, कुछ डर नही है।

भीष्म—मेरे प्यारे ! दयामय हरि ! अन्तको राह दिखाओ—अपने चरणोकी नावका सहारा दो।

कृष्ण—हे त्यागी संन्यासी भीष्म ! योगी ! धर्मवीर ! वह देखो, कालके आकाशभेदी शिखरपर धर्मका प्रकाशपूर्ण मन्दिर विराजमान है। वह धूपकी सुगन्ध आ रही है। वह सुनो, शंख बज रहा है। त्यागी वीर ! जाओ—कोई चिन्ता नहीं है। किनारेपर नाव तैयार है, उसपर चढ़कर अपने पुण्यकी ध्रुव ज्योतिसे प्रकाशमान मार्गमे चले जाओ। तुम धन्य हो !—तुम्हारी अक्षय कीर्ति संसारमे सदा ही उद्घोषित होती रहेगी।

(पर्दा गिरता है)

